मंज़िल

(चार कहानियाँ)

भैरव प्रसाद गुप्त

दीपावली, २००२

प्रकाशक—

सोमेश्वर प्रसाद गुप्त,

कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग

प्रथम संस्करण

मूल्य २)

मुद्रक—

महेश प्रसाद गुप्त,

केसरवानी प्रेस, प्रया

सम्मति

'मज़िल' श्री भैरव प्रसाद जी गुप्त की कहानियो का सुन्दर संकलन है। मैंने इस संकलन की कुछ कहानियाँ पढ़ी हैं। ये कहानियाँ आजकल के मासिक पत्रों की कहानियों से भिन्न हैं। इनमे चरित्र-निर्माण के सफल संकेत हैं। मनोवैज्ञानिक चित्रण कहीं-कही बहुत सच्चे उतरे हैं। घटनाओ की क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ मे स्वाभाविकता है। मै चाहता हूँ कि गुप्त जी इसी प्रकार कहानियाँ लिखकर आजकल के नवीन कहानी-लेखकों का पथ-निर्देश करे।

वासना के अतिरजन की अपेक्षा राष्ट्रीयता के उन्मेष की भावना हमारे कहानी-साहित्य को बल प्रदान करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इस दिशा मे गुप्त जी की 'मास्टर जी' कहानी अच्छी कही जा सकती है।

हिन्दी-विभाग
प्रयाग विश्व विद्यालय
प्रयाग

—रामकुमार वर्मा
एम ए, पी. एच. डी.

११—११—४५

क्रम

अपने ऐनुद्दीन और कैसर को,

जो मेरी आँखों के आँसू और होंठों की मुस्कान हैं !

—मै० प्र० गुप्त

मास्टर जी

योगेश कमरे के बाहरी दरवाजे के पास अन्दर से एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। और कुरते की जेब से खद्दर का रूमाल निकाल अन्दर के दरवाजे के पर्दे पर आँखें उठाये माथे और गले का पसीना पोंछने लगा।

पर्दे के छल्ले एक-दूसरे से टकरा कर खनखना उठे। योगेश सचेत-सा हो, रूमाल जेब में रखता कमरे के अन्दर छोटी मेज के सामने कुर्सी खींच कर, कुरते के गले और आस्तीनों को ठीक करता हुआ बैठ गया।

"नमस्ते!" एक दबी-सी आवाज बाहर निकलते-निकलते शीला के सटे ओंठों में ही गुम हो गई। शीला पर्दे को पुनः फैला कर सिर नीचा किये, बायें हाथ में कापियाँ और किताबें लटकाये, दाहिने हाथ से आँचल ठीक करती, मेज के सामने बढ़ आई। और कुर्सी को जरा पीछे हटा, मेज पर किताबें रख, ब्लाउज के गले से फाउन्टेनपेन निकाल कर आँखें झुकाये बैठ गई।

'लेख लिखा है?" शीला के हाथों की ओर, जो एक कापी उलटने में लगे थे, देखते हुये योगेश ने पूछा।

शीला ने सिर उठा कर ब्लाउज के आस्तीन में से एक नन्हा-सा हल्के गुलाबी रङ्ग का रूमाल निकाल, अपने गुलाब-से चेहरे पर हल्के-फुल्के फेर कर, अपने लाल होंठों से लगा कर, योगेश की ओर एक दबी नजर से देखा। योगेश की आँखें उसकी नजर से मिलते ही तिलमिला कर झुक गई, जैसे

उस नजर मे शीला के हृदय की कोई दबी टीस फूट कर तीर-सी योगेश की आँखो मे चुभ गई हो, और उसकी पलके काँप कर मुँदने को हो गई हो। उसका हृदय सन्न-सा हो गया। यह सब क्या देख रहा है वह आज ?

शीला का सिर पूर्ववत मेज पर झुक गया। किताबो पर आखे गडाये उसने अपना निचला होठ दाँतो से जोर से भीच लिया, जैसे हृदय के किसी उच्छ्वसित भाव को बरबस मुँह से बाहर निकलने से रोक लेना चाहती हो। योगेश ने सँभल कर सिर जरा नीचे किये हुये ही एक तीव्र दृष्टि शीला के मर्म-भरे चेहरे पर फेकी, जैसे ऊपरी आवरण भेद कर जान लेना चाहता हो उसके हृदय के दबे भावो को।

"शीला !" उस पर दृष्टि गड़ाये तनिक आश्चर्य से बोला योगेश।

"जी !" आँखे योगेश की ओर तिरछी करती शीला बोली। उसके होठ कुछ फड़फड़ा कर रह गये।

"शीला !" आवेश पर अधिकार न पा योगेश जरा जोर से बोल पडा।

शीला की पलको पर दो बड़ी-बडी आँसू की बूँदे लटक गई।

योगेश अस्थिर हो उठा। उसके मुँह से सहसा निकल गया—"उफ !" और शीला की पलको पर लटकी बूँदे चू पडी किताब पर टप्-टप्।

योगेश कुर्सी पर आगे खिसक मेज से सट गया, और अपने को सँभाल कर संयत स्वर से बोला—"शीला, तुम्हारी आँखो मे आँसू कैसे ?"

शीला रूमाल से आँखो का पानी पोछ कर उसे मुँह पर रख कर सिसक पडी।

"क्या हुआ, शीला ? आज अचानक तुम इस कदर" मर्माहत-सा शीला की भीगी पलको की ओर देखता, योगेश चुप हो गया।

शीला की सिसकियाँ लम्बी हो धीरे-धीरे रुक गई। रूमाल से मुँह पाछ, एक लम्बी साँस ले, उसने व्यथा-भरी आँखो से योगेश की ओर देखा।

"क्या पढे, मास्टरजी ?" शीला ने नजर मोड आँखे मलकाते हुये पूछा।

"शीला, तुम्हारी आँखो के इन आँसुओ मे आज क्या कुछ कम पढ़ने को है कि कोई किताब खोली जाय ?"

"क्षमा कीजिये, मास्टरजी ! मै अपने को रोक न सकी। नही तो यो हृदय की कमजोरी"

"यह क्या कह रही हो, शीला ?" बीच ही मे योगेश बोल पडा—"क्या यह सब भी मुझसे कहने की बाते हैं ? मुझे तो दुख होता, यदि तुम अपने मास्टरजी के सामने इन आँसुओ को निकलने के पहले ही पी जाती, अपने हृदय की व्यथा उच्छ्वसित होने से रोक लेती, अपने प्राणो की विह्वलता पर पर्दा डाल देती। भला तुम्हारी कमजोरियाँ तुम्हारे मास्टरजी की नजर मे तुम्हे गिरा सकती हैं ?"

"मास्टरजी, इसीलिये तो जिस व्यथा को मैं अपने हृदय के कोने मे आज दिन भर दबाये तडपती रही, आपके सामने वही आँसू बन कर फूट पडी, जैसे वह आप ही के आने की राह देख रही थी !" शीला की आँखे योगेश के प्रति अपनत्व से भर, उसकी ओर उठ कर, झुक गई।

"शीला, चार बरसों के बीच आज यह पहला अवसर है, जो तुम्हे यो उद्विग्न होते देख रहा हू ! आज मुझे भी कम दुख नहीं हुआ है !"

"मास्टरजी, मुझे अफसोस है कि मेरी वजह से आप का दिल दुखा !"

"हू ! पगली, क्या किसी की वजह से किसी को दुख होता है ? अरे, सुख-दुख का सागर तो अपना ही मानस है। जब मन्द समीर अपने सङ्गीत-भरे पखो को फैलाये इसके ऊपर उडता है, तो इस सागर की सतह पर लोल लहरियाँ उठ मधुर गुजन करती हैं, और जब तूफान अपने भयावह पखों को फडफडाता इसके ऊपर छा जाता है, तो वही लोल लहरियाँ विकराल लहरे बन क्रन्दन कर उठती हैं, सागर का किनारा थर्रा उठता है !" अर्द्ध-निर्मीलित नयनो मे जैसे सुदूर तक देखता अपने-मे डूबा-सा योगेश बोला।

"मैं समझी नहीं, मास्टरजी !" शीला के चेहरे पर एक उलझन-सी व्यक्त हो गई।

"अच्छा, तो यों समझो ! एक कलाकार ने हफ़्तों की जी-तोड़ मिहनत के बाद एक मूर्ति की रचना की। कलाकार की आँखों के सामने उसके परिश्रम का सुन्दरतम रूप एक मूर्ति बन कर खड़ा हो गया। कलाकार की आँखों में उसे देख कर गर्व-मिश्रित हर्ष भर गया। वह अपने निर्माण के सौष्ठव पर स्वयं मुग्ध हो झूम उठा। अचानक एक हवा का प्रचन्ड झोंका आया। मूर्ति काँप कर धराशायी हो गई। उसका अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो गया। कलाकार की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसका हृदय विदीर्ण हो गया। उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी।" और फिर शीला की गम्भीर मुद्रा की ओर देखते हुए योगेश पूछ बैठा—"अब तुम्ही बताओ, शीला, कलाकार को जो दुख हुआ, उसका दोष क्या मूर्ति के ऊपर पड़ता है ?"

"नहीं, मास्टरजी !" छोटा-सा उत्तर दे, शीला योगेश की ओर उत्सुक आँखों से देखने लगी, जैसे वह उससे और कुछ सुनना चाहती हो।

"तो फिर किसको दोष दिया जाय ?" धीरे-से पूछा योगेश ने।

"हवा के प्रचण्ड झोंके को !"

"हवा के प्रचण्ड झोंके को," एक निपुण तर्क-शास्त्री की तरह दुहराते हुए अपने उद्देश्य की ओर बढ़ते योगेश ने फिर पूछा—"और, शीला, क्या हवा-पानी पर भी मनुष्य का अधिकार है ?"

"ऊँ-हूँ !" शीला ने कहते हुये अपनी आँखें योगेश की ओर उठा दीं। उनमें एक तीव्र उत्सुकता मचल रही थी।

"तो, शीला, जिस पर हमारा अधिकार नहीं, यदि उसी के कारण किसी को दुख हो," योगेश शीला की आँखों में एक रहस्यमय आलोक की चमक देख कर बोला—"तो क्या हम उसके दोषी ठहराये जा सकते हैं ? इसी बात

को यो तौल लो—अपने मास्टरजी को कलाकार के स्थान पर बैठा दो और तुम स्वय मूर्त्ति बन कर उनके सामने खडी हो जाओ ! फिर सोचो”

“मास्टरजी !” कुछ उतावली-सी बीच ही मे बोल पड़ी शीला—“आप कलाकार ! मै आपकी मूर्त्ति !”

“हॉ-हॉ, शीला ! तुम मेरी वह एक मूर्त्ति हो, जिसे मै आज चार वर्षों से अपनी सारी आत्मानुभूतियाँ, अपने प्राणो की लगन, मस्तिष्क के ज्ञान और हृदय का स्नेह लगा कर अनवरत परिश्रम मे गढ रहा हूं। तुम्हें आश्चर्य होगा यह जान कर, क्योंकि तुम जानती हो कि मै यूनिवर्सिटी मे सैकडो लडके-लडकियो का मास्टर हू। फिर मैने एक ही मूर्त्ति का कलाकार अपने को क्यो कहा ? इसके उत्तर मे मै अपने ही हृदय की बात कहूगा। शीला, सैकडो लडके-लडकियो के बीच एक मास्टर को रख कर लोग या तो अध्यापक के गुरुतर भार के सम्बन्ध मे नासमझी से काम लेते हैं, या शिक्षक शब्द का मखौल उड़ाते हैं ! एक कलाकार को सैकडो शिला-खण्डो के बीच खड़ा कर उससे कहा जाय कि कलाकार, तू अपनी छेनी और हथौडी उठा, और इन सब शिला-खण्डो मे एक ही साथ कला भर दे, इनकी सौन्दर्य-प्रतिमायें खड़ी कर दे, इनमे सत्य, शिव की शाश्वत भावनाओ की ज्योति छिटका दे, तो, शीला, उस कलाकार की क्या हालत होगी ?” तनिक रुक कर योगेश फिर बोला —“मुझे शुरू से ही अध्यापन-कार्य मे दिलचस्पी थी। पचीस वर्ष की आयु मे मैने बाल-मनोविज्ञान से एम० ए० की परीक्षा मे सर्व-प्रथम स्थान प्राप्त किया। यूनिवर्सिटी ने मेरे लिये शिक्षा-विषयक खोज का एक विशेष विभाग खोला। मै अपने पूरे मनोयोग से खोज मे लग गया। तीन साल के बाद मैने ‘शिक्षा के उद्देश्य’ पर थीसिस लिखी। यूनिवर्सिटी ने मुझे डाक्टरेट की उपाधि दे जो उच्च पद दिया वह तुम्हे मालूम ही है। उन दिनो तुम्हारे स्वर्गीय पिता इस प्रान्त के कांग्रेसी शिक्षा-मन्त्री थे। उनसे मेरी पहली भेंट यूनिवर्सिटी की एक पार्टी मे हुई थी, जो उनके शिक्षा-मन्त्री होने के उपलक्ष

मे दी गई थी, क्योंकि वह इसी यूनिवर्सिटी के स्नातक थे। उस पार्टी मे मैने बधाई-भाषण के साथ शिक्षा तथा अध्यापन-कार्य पर अपने स्वतन्त्र विचारो का उल्लेख करते हुये उनसे अपील की थी कि वह मेरे विचारो पर ध्यान दे, तथा शिक्षा-संस्थाओ मे प्रयोगात्मक रूप से उन्हे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करे। उन पर मेरा प्रभाव पड़ा था। दूसरे ही दिन सुबह वह मेरे बंगले पर आये। मुझे आज भी याद है, उन्होने मेरे विचारो की उच्चता स्वीकार करते हुए कहा—'डाक्टर योगेश, आपके शिक्षा-सम्बन्धी विचार अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, तथा आपके उद्देश्य महान् हैं। किन्तु दुख है कि अपने सीमित साधनो तथा आप-जैसे शिक्षा-विशारदो के अभाव के कारण हम उससे फिलहाल कोई लाभ नही उठा सकते। फिर भी मै चाहता हू कि यदि आपकी इच्छा हो, और यदि सचमुच आप शिक्षा के कलात्मक रूप के प्रयोग का साधक बनना चाहते हो, तो मै आपके लिये एक प्रयोगशाला का प्रबन्ध कर दूँ।' मैने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी। तब उन्होने कहा—'यदि मै आपके सामने कुछ प्रार्थना-स्वरूप रखूँ, तो आप उसे अपनी शान के खिलाफ तो न समझेगे?' मै उनकी बात सुन कर चकरा गया। कुछ घबराया-सा बोल पड़ा—'यह आप क्या कह रहे हैं? आप मेरे पिता-तुल्य है! आपकी हर बात मेरे लिये आशीर्वाद-स्वरूप है! आप निस्सकोच कहिए!' मेरी बात सुन कर वह एक-ब-एक गम्भीर हो गये। उनका सिर झुक गया। फिर न जाने हृदय के किन भावो की कशमकश मे उनके मुँह से ये याचना के शब्द फूट पड़े—'डाक्टर योगेश, मै धन्य हूगा, यदि आप मेरे भवन को अपनी प्रयोग-शाला बनाये और मेरी इकलौती पुत्री शीला को अपनी शिष्या!' वाक्य खतम करते-करते उनकी आँखे एक दीन भिखारी की आँखो की तरह मेरी आँखो की ओर उठ गई। मै अनियन्त्रित-सा उनके चरणो पर झुक गया। उन्होंने मुझे उठा कर छाती से लगा लिया। मैं बच्चे-सा उनसे लिपट गया। उनकी आँखो से स्नेह-स्रोत फूट पड़ा। मेरे प्राण उसमे घुल कर उनसे एकरस

हो गये—एकरस, शीला !" कहते हुए योगेश की भीगी आँखे शीला की ओर उठ गई । शीला की आँखो मे पिता की स्नेह-स्मृतियाँ तरल हो झलमला उठी ।

योगेश कुछ असयत स्वर मे धीरे से बोला—"शीला, वह अपनी भावनाये अपने हृदय मे ही दबाये चले गये । उनकी बाते अब याद ही बन कर रह गई हैं । उनको छेड़ने से हृदय के जख्मो म काँटे चुभेंगे ! हाँ, तो सुनो, मै कह रहा था," योगेश सयत हो अपनी पहली बातो से सिलसिला जोडते हुये बोला—"हमारा परिचय हुआ । तुम्हे देख कर मै वैसे ही खुशी से झूम उठा, जैसे कोई कवि अपने हृदय मे कोई सुन्दर कल्पना उठने पर । किन्तु तुम्हारा ट्यूटर-गार्जियन बनते समय मै झिझक और उलझनो से परेशान हो उठा, ठीक उसी तरह जैसे कोई कलाकार अपने हृदय के उमडते भावों को अकित करने के लिये कलम उठाते समय होता है । तुम देखती हो कि वह झिझक और उलझन की परेशानियाँ अब भी बदस्तूर कायम हैं और कायम रहेगी, जब तक कि मेरी कला पूर्ण विकसित हो तुम्हारे प्राणो को सौन्दर्य-सौरभ से भर तुम्हें ससार मे खडा न कर दे । आज चार वर्षों से मै यही उद्देश्य लिये मजिल पर मजिल तै करता हुआ चला आ रहा हू । ज्यों-ज्यों आखिरी मजिल समीप आती जा रही है, त्यों-त्यों मेरे हृदय की खुशी बढती जा रही है । किन्तु आज तुम्हारी आँखो के ये आँसू तुम्हारे हृदय के उच्छ्वासो का यह तूफान मेरी साधना को कँपा रहा है, शीला ! क्या मेरी साधना अपूर्ण ही रहेगी ?"

"नही-नहीं, मास्टरजी, ऐसा न कहिये—ऐसा न कहिये ! यह मेरा सौभाग्य है, जो आपके प्राणों की साधना की पात्री बनने का मुझे गौरव प्राप्त हुआ । मै इस गौरव के योग्य बनूँगी ।"—दृढता के स्वर मे शीला बोली ।

"शीला, साधक की साधना उसका प्राण होती है—उसका सर्वस्व होती है ! जब भी उसकी साधना को कोई ठेस पहुँचती है, तो वह तिलमिला

उठता है ।"

"मै जानती हू, मास्टरजी !"

"तो फिर क्या मै जान सकता हूं कि वह कौन-सी बात थी, जिससे तुम इतनी अस्थिर हो उठी ?"

"कुछ नही, मास्टरजी, कुछ नही ! मै बिलकुल ठीक हूँ !"—मलकती आँखो मे कुछ छिपाती-सी शीला बोली ।

"शीला, तुम अपने मास्टरजी की आँखो को धोखा देना चाहती हो ?" तनिक मुस्कराते हुए योगेश ने पूछा ।

"मै चाहूं तो भी क्या यह सम्भव है, मास्टरजी ?"

"तो फिर बोलो, क्या बात है ?" कुछ उत्सुक-सा योगेश बोला ।

"क्या अम्मा ने आप से कुछ नहीं कहा ? मै तो समझती थी कि आपको सब-कुछ मालूम है !"

"मुझे कुछ मालूम नही, शीला ! मेरे जाने मे ऐसा कुछ कैसे हो सकता है, जिससे तुम्हारे हृदय की भावनाओ को चोट पहुँचे ?"

"तो फिर क्या आपकी राय इसमे नहीं है ?"

"किस बात मे, शीला ? मै कहता हूं, मुझे कुछ नहीं मालूम है । ईश्वर के लिये, जल्दी बताओ, शीला !" अत्यधिक उत्सुकता की बेचैनी योगेश की आँखो मे उभर आई ।

"मेरी शादी होने जा रही है, मास्टरजी !" कहते-कहते एक व्यथा-भरी हल्की मुस्कान शीला के फड़कते होठो पर उभर आई ।

"ओह ! तो यह बात है ! मै कहूं कि" शेप शब्द जैसे योगेश की आखो की सिकुडन मे लुप्त हो गये ।

"मास्टरजी ! मास्टरजी ! आप इस कदर गम्भीर क्यो हो गये ?" हाँफती-सी योगेश की ओर आखे फाड़े शीला बोली ।

टन्-टन्-टन् दीवार की घडी ने सात बजने की सूचना दी ।

"अच्छा, शीला, सात बज गये। आज बड़ी देर हो गई। फिर कल बातें होंगी।"—कहते-कहते योगेश झट से उठ खड़ा हुआ, जैसे वहाँ के उलझे वातावरण में वह एक-ब-एक घबरा उठा हो। शीला की व्यथा से तड़पती आँखें योगेश के चेहरे पर उठ कर रह गईं। योगेश एक ठण्डी साँस ले कर कमरे से बाहर हो गया।

२

"मास्टरजी!" योगेश कुर्सी पर बैठा ही था कि शीला की अम्माँ की आवाज आई।

"जी!" सकपकाया-सा उत्तर दिया योगेश ने।

"जरा इधर आइये!"

ड्राइङ्ग-रूम में एक कोच की ओर इशारा करते हुए, जिसके सामने एक छोटी-सी शीशे की चमकती मेज पर मिठाइयों और नमकीनों की तश्तरियाँ सजी हुई थी, शीला की अम्माँ ने कहा—"बैठिये!"

योगेश धीरे से कोच पर बैठ गया। सामने दीवार पर टँगे शीला के स्वर्गीय पिता के तैल चित्र पर उसकी आँखें उठ गईं। वह कुछ सोचता तनिक देर के लिये कुछ खो-सा गया।

"कुछ खाइये! चाय अभी आ रही है," योगेश के सामने की दीवार से लगी कोच पर बैठ कर शीला की अम्माँ ने कहा।

"ओह!" अपने में आ कर चित्र से आँखें हटाते हुये योगेश ने कहा—"बेकार आपने इतना कष्ट किया!"

'नहीं-नहीं, मास्टरजी, इसमें कष्ट की क्या बात है? आप शुरू कीजिये!

और योगेश जैसे फिर कुछ सोचने-सा लगा। फिर यो ही उसने हाथ बढ़ाया, और एक समोसे का टुकडा उठा मुँह म डाल लिया।

इधर-उधर एक चौकन्नी दृष्टि डाल कर शीला की अम्माँ ने योगेश को छेड़ा—"मास्टरजी, आज आप से कुछ जरूरी बाते करनी हैं।"

योगेश जैसे चिहुँक कर मुँह का टुकडा तेजी से चबाता बोल पड़ा—"जी।"

"मास्टरजी, आप आज कुछ खोये-से लगते ह। तबीयत तो" .

"जी, हाँ! मै बिलकुल ठीक हूं। जरा यो ही हाँ, तो आप मुझसे कुछ कहना चाहती हैं?"

"हाँ, कुछ जरूरी बाते करनी हैं।"

"अच्छा, तो कहिये!" मठरी का एक टुकड़ा उठा कर उनकी ओर देखते हुए योगेश बोला।

"आज-कल शीला कुछ उदास रहती है।"

"जी।"

"जानते हैं क्यो?"

"जी!"

"तब तो आपको बहुत-सी बाते मालूम ही हैं। मुझे थोड़ा ही कहना पड़ेगा। मास्टरजी, शीला के पिताजी की इच्छा थी कि शीला की शादी के विषय मे मास्टरजी की राय जरूर ली जाय।"

"जी!"

"तो फिर शीला का रिश्ता आपको पसन्द है न?"

"भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?"

"जी, यह तो मै जानती हू। किन्तु मै यह नही चाहती कि इस अहम मसले पर आपकी पक्की राय लिये बिना मै कुछ भी करके 'उनकी' स्वर्गीय आत्मा को किसी भी तरह दुखाऊँ! मै चाहती हू कि उनकी हर इच्छा

पूरी हो !"

"यह तो होगा ही ! आप तो जानती ही हैं, माँजी, कि उनका मेरे ऊपर अपार स्नेह था, अत्यधिक ममता थी, जो उन्होंने इस तरह अपने कौटुम्बिक जीवन मे भी मुझे खींच लिया था। उनके इसी अपनापे ने मुझे एक दिन शीला की शिक्षा-दीक्षा का भार अपने ऊपर लेने को विवश किया था। मैंने उनकी अनुपस्थिति मे अपने कर्तव्यों का पालन कहाँ तक किया है, यह तो उनकी स्वर्गीय आत्मा को ही ज्ञात होगा। शीला इस साल बी० ए० कर लेगी। कालेज की पढाई के अलावा मैंने जीवन के सच्चे आदर्शो के अनुसार उसके जीवन को गढने की चेष्टा की है। मै अपने कार्य मे कहाँ तक सफल हुआ हू, इसका उत्तर तो शीला का आगे का जीवन ही देगा। किन्तु माँजी, शादी से भी हमारे जीवन का गहरा सम्बन्ध होता है। आपने जहाँ शीला की शादी तै की है, वह शीला के आदर्शो के अनुकूल नहीं जान पड़ता। क्योंकि शीला इस बात को सुन कर दुखी है मुझे डर है कि यह शादी शीला के आगे के जीवन को किसी और राह न लगा दे !"—कहते-कहते योगेश की आवाज जैसे कुछ भर्रा गई।

"ओह ! लेकिन, मास्टरजी, शीला ने तो मुझ से कुछ नहीं कहा। और फिर आप ही बताइये, अनिल मे ऐसी कौन-सी बात है, जो वह शीला के योग्य नहीं ? वह एम० ए० है। इम्पीरियल सिक्रेट्रेरियट मे एक अफसर है। हजार-बारह सौ मासिक उसका वेतन है। देखने मे सुशील और सुन्दर है। अब और क्या चाहिये ?" वाक्य पूरा करते माँजी की प्रश्नात्मक दृष्टि जब योगेश पर उठी, तो जैसे उससे क्रोध की चिनगारियाँ छिटक रही थीं।

योगेश कुछ घबरा गया। वह उनकी बातों का क्या उत्तर दे, यह उसकी समझ मे नहीं आ रहा था। घबराहट मे ही उसके मुँह से निकल गया—"इसका उत्तर तो, माँजी, शीला ही बेहतर दे सकती है। क्यों न आप उसी से साफ-साफ पूछ ले !" उस उत्तरदायित्व की उलझन को, जिसमे

योगेश पड़ गया था, यों खिसका, उसका हृदय कुछ हल्का हो गया। उसने तश्तरी से बर्फी का एक टुकड़ा और उठाया।

"मैं ऐसा करना तो नहीं चाहती थी, मास्टरजी, किन्तु जब आपकी यही राय है, तो उससे भी पूछे लेती हूं!" अपना सिर योगेश की ओर से घुमाते हुए उन्होंने पुकारा—"ब्वाय! ब्वाय!"

बायीं ओर के दरवाजे का पर्दा कन्धे से हटा कर हाथ में चाय की सजी हुई ट्रे लिये खानसामा दाखिल हुआ और मॉजी की ओर शंकित आँखों से देखता हुआ योगेश की ओर बढ़ा।

"चल, जल्दी कर! ट्रे रख कर बीबी को तो बुला!"

अदब से योगेश के सामने टी-टेबिल पर ट्रे रख कर, खानसामा बाहर चला गया।

"मास्टरजी, तब तक आप चाय पी लें!"

योगेश ने एक प्याली में चाय बना, उसे होंठों से लगा, एक घूंट ले, दाहिनी ओर के दरवाजे की ओर दबी कनखियों से देखा।

"क्या है, ममी?" कहते हुए सिकुड़ी-सी शीला माँ के सामने आ कर खड़ी हो गई। योगेश चाय की प्याली होंठों से हटा, उससे उठती हुई भाप को देखने लगा।

"बैठो, वहाँ!" दाहिनी ओर की दीवार से लगी कोच की ओर इशारा करते मॉजी ने कहा। निचला होंठ दाँतों में चबाते, आँखें झुकाये, शीला कोच पर बैठ गई।

"चाय पी चुके, मास्टरजी?" बात शुरू करने की गरज से मॉजी ने जानना चाहा।

"जी, हाँ!" कहते हुए अध खाली प्याली योगेश ने ट्रे में रख दी, और सँभल कर मॉजी की ओर देखा।

मॉजी की मुद्रा एक-ब-एक गम्भीर हो उठी। उन्होंने शासन की दृष्टि

से शीला की ओर एक बार देखा। शीला ने निचला होंठ अन्दर को मोड़, सिर झुकाये ही, पलकें जरा ऊपर उठाईं। माँजी की तीर-सी नजर से उसकी नजर मिली नहीं कि उसकी आँखें दहशत से भर कर झुक गईं। उसका हृदय काँप-सा गया।

"शीला, यह तो तुम जानती हो न कि अगली बीस मार्च को तुम्हारी इक्कीसवीं वर्ष-गाँठ मनाई जायगी?"

"जी!" का अस्फुट शब्द शीला के होंठों पर काँप कर गुम हो गया।

"तुम्हारी बी० ए० की पढ़ाई भी इस साल खत्म हो जायगी। इसलिये हमारे लिये अब जरूरी हो गया है कि जितनी जल्द हो सके तुम्हारे हाथ पीले कर दें।"

शीला से कुछ सुनने की प्रतीक्षा में माँजी अपनी आँखें शीला पर गड़ाये रहीं। शीला ने अपने दाहिने हाथ में आँचल का छोर ले बायें हाथ की उँगली में लपेटती, योगेश की ओर काँपती नजरों से देखा। योगेश किसी विचार में डूबा-सा बायें हाथ पर माथा टिकाये, दहिने हाथ के नाखून कोच की गद्दी पर रगड़ रहा था।

"बेटी, अब तू बच्ची तो रही नहीं। इसलिये मैं सब बातें तेरे सामने साफ-साफ रख देना चाहती हूँ, ताकि तू स्वयं विचार कर अपने जीवन-साथी के बारे में अपनी राय कायम कर सके। आज एक हफ्ते से अनिल बाबू यहाँ आ रहे हैं। तुम दोनों को एक-दूसरे से मिलने-जुलने की पूरी स्वतन्त्रता मैंने दे रखी है, ताकि तुम दोनों एक-दूसरे के जीवन से सम्बद्ध होने के पहले एक-दूसरे को पूरी तौर पर समझ लो, जान लो! अनिल बाबू अपना विचार मुझसे प्रगट कर चुके हैं। अब तुम्हारे मास्टरजी के सामने मैं तुम्हारे विचार जानना चाहती हूँ। बोलो, शीला, अनिल बाबू के विषय में तुम्हारी रीडिङ्ग कैसी है?"

शीला का सिर गड़ गया। उसके हृदय की मूक व्यथा उसकी झुकी हुई

मलिन पलकों पर मुखरित हो उठी। माँजी और योगेश की शीला की ओर उठी आँखो की उत्सुकता की चमक जैसे शीला की व्यथा की छाया मे कुछ मन्द-सी पड़ गई। माँजी का चेहरा कुछ उतर गया। उन्होंने एक बार हताश दृष्टि से योगेश की ओर देखा। योगेश की आँखो मे एक स्थिरता व्याप्त थी, वातावरण की उस स्थिरता के सदृश, जो तूफान के पहले होती है। तूफान की आशका उसको माँजी की ओर से थी।

माँजी के चेहरे की निराशा कुछ गम्भीर हो एक-ब-एक उग्र हो उठी। वह आवेश मे कुछ हाँफती-सी बोली—"शीला, इस चुप्पी का क्या मतलब है? मै चाहती हू कि तू साफ-साफ अपने मन की बात कह! मै भी तो कुछ समझूँ!"

"हाँ-हाँ, शीला, तू बोलती क्यो नही? तू अपने दिल की बात माँजी से न कहेगी, तो किससे कहेगी?"—माँजी के चेहरे पर लाल-पीली, बनती-बिगड़ती रेखाओं को देख कर योगेश परिस्थिति की गम्भीरता को कुछ हल्का करने के लिये, शीला को सहारा देना आवश्यक समझ बोल पडा।

शीला की सहमी आँखे ऊपर को उठी। अपने मे सिमटती, सकुचाई-सी झिझकती हुई बोली वह—"ममी, अनिल बाबू के जीवन का अफसरी तौर-तरीका मुझे कुछ पसन्द नही!" शीला कह तो गई, किन्तु वाक्य पूरा करते-करते जैसे वह थर्रा गई कि कैसे यह बात ममी से कहने की उसने हिम्मत की।

माँजी छुटते ही बरस पडी—"उसका अफसरी तौर-तरीका पसन्द नही? तो क्या तू चाहती है कि अनिल बाबू एक भिखारी की तरह दर-दर हाथ फैलाते और सिर झुकाते चले? वह अफसर है और अफसर की तरह रहता है! कोई स्वाँग नहीं रचता! और तुझे तो इस बात का गर्व होना चाहिये कि तू एक अफसर की पत्नी होने जा रही है!" माँजी के होठ बात खत्म करते-करते फड़फड़ा गये।

"यही तो मुझ से न होगा, ममी!" शीला बोल पडी जोर से आवेश मे,

जैसे उसके हृदय का सत्य डर का बन्धन तोड़ तड़प उठा हो।

"बेशर्म !" माँजी की आँखों का क्रोध भड़क उठा।

"माँजी ! माँजी !" योगेश चिल्ला उठा।

शीला काँपती उठ गई, और झुकी आँखों से टप-टप आँसू चुआती बाहर चली गई। माँजी बिफरती हुई उसकी ओर घूरती रही।

"माँजी। माँजी।" योगेश फिर चिल्लाया।

"मास्टरजी, आप समझते नहीं कि इसका नतीजा क्या होगा !"

"लेकिन आप शान्त तो होइये !"

"आप शान्त होने के लिये कह रहे हैं ! मास्टरजी, आप तो जानते हैं कि हमारी सोसाइटी कैसी है ! आज एक हफ्ते से शीला और अनिल हर जगह साथ-साथ रहे हैं, सभा-सोसाइटी में साथ-साथ घूमे हैं, सिनेमा, क्लबों में एक-दूसरे की बगल में घन्टों बैठे हैं। क्या इससे लोगों को मालूम नहीं हो गया होगा कि शीला और अनिल की शादी तै हो गई है ? हमारी सोसाइटी के सामने जब कभी एक युवक और युवती इस तरह अपने को पेश करते हैं, तो इसका मतलब यही होता है कि वे एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, और अब खुल कर अपने प्रेम का प्रदर्शन इसलिये करते हैं कि सोसायटी वालों को यह बात मालूम हो जाय कि उनका प्रेम सफलता की मंजिल तक पहुँच गया है, और अब बहुत जल्द ही एक-दूसरे के दामन में बँध जाने वाले हैं। अब आप ही बताइये, कल से जब लोग शीला और अनिल को अलग-अलग देखेंगे, जब उन पर यह बात प्रकट हो जायगी कि उन दोनों में खटक हो गई और उनकी शादी की बात टूट गई, तो ये दोनों कौन-सा मुँह लेकर उनके सामने जायँगे ? यह कितनी शर्मिन्दगी की बात होगी, मास्टरजी !"

"लेकिन, माँजी, इसमें दोष शीला का नहीं आपका है !"

"मेरा दोष है ! मैं क्या जानती थी कि शीला"

"आपने समझने की कोशिश ही कब की, माँजी ?" बीच ही में योगेश

बोल पड़ा—"आप शीला की माँ हैं, लेकिन माँ बन कर आपने अपनी बेटी को जानने का कब प्रयत्न किया ? शैशव मे उसे आया की खर्राटी हुई गोद नसीब हुई, बचपन मे उसे कनवेंट की सिस्टरो के कृत्रिम प्यार के झूले मे गढी हुई लोरियाँ सुनने को मिलीं। कुछ बडी हो कर कनवेंट से कैम्ब्रिज की जुनियर परीक्षा पास कर जब घर आई, तो इकलोती होने के कारण पिता के नयनो का तारा बनी। आपको भला अपने पश्चिमी जीवन के तौर-तरीको और सभा-सोसायटी से फुरसत ही कब मिली, जो आप अपनी बेटी को अपनी आतुर गोद मे ले तनिक दुलारती, अपनी आँखो का स्नेह-रस तनिक उसकी भोली आँखो मे ढरकाती, अपने होठो मे मातृत्व का प्यार भर तनिक उसके पतले-पतले सरस होठो को चूमती !"

"इससे क्या ? मेरा भी तो लालन-पालन ऐसे ही हुआ था। हमारी सोसायटी मे शिशु-पालन का यही रिवाज है !"

"तभी तो मै कहता हू, कि आप से बेहतर शीला को उसकी आया समझती है, जिसने शैशव म उसे अपनी छाती का दूध पिलाया था कनवेंट की उन सिस्टरो का शीला का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आप से कही अधिक ठोस होगा, जिन्होने बचपन मे उसे शिक्षा-दीक्षा दी और उसके साथ खेली कूदी। और शीला के पिता तो सचमुच शीला के निर्माता थे, जिन्होने अपने हृदय के प्यार और अपने प्राणो की सजीवनी से उसकी रचना की थी !" कहते-कहते योगेश की आँखो मे शीला के पिता की पूत स्मृतियाँ नन्ही-नन्ही आँसू की बूँदे बन झलमला उठी।

माजी ने एक ठण्डी साँस ले तनिक विह्वल आँखो से योगेश की ओर देखा।

योगेश फिर बोला—"उन्होने शीला को समझा था, माँजी ! मुझे याद है, उस दिन शीला की उच्च शिक्षा का भार मेरे कन्धो पर रखते हुये उन्होने कहा था—'डाक्टर योगेश, शीला मेरे हृदय का टुकड़ा है, उसमे मेरे ही आदर्शों की धड़कन पैदा करनी है ! यद्यपि उसके बचपन के सस्कार मेरी भावनाओ से

ेल नहीं खाते, फिर भी अभी मिट्टी कच्ची है। उसे इच्छित रूप देना
तुम्हारे-जैसे कुशल शिक्षक के लिये असम्भव नहीं है।' मेरी शिक्षा का और शीला
के पिता के जीवन का आदर्श एक था, और वह था देश-सेवा! अब आप
ही बताइये, मार्जी, एक देश-प्रेम की मूर्ति को, जिसके अन्दर एक देश-प्रेमी
पिता की आत्मा ने प्राण फूँके हों, जिसके अंग-प्रत्यंग के सौष्ठव-गढ़न में एक
देश-प्रेमी कलाकार ने अपने हृदय की भावनाओं को मूर्त्त किया हो, क्या
अनिल-जैसे अफसरी प्रकृति के युवक के हाथ में देना उचित है? शीला
आपका लिहाज करती है, जो एक हद तक आपके आज्ञानुसार अपने हृदय
पर पत्थर रख कर अनिल बाबू के साथ घूमने-फिरने को मजबूर रही है, वरना
क्या वह कभी भी इसे पसन्द करती?"

"मास्टरजी, शायद आपको पता नहीं कि शीला के पिता मेरे तौर-तरीकों
से खुद भी चिढ़ते थे। और इसीलिये वह जब तक रहे, शीला को मेरे निजी
संसर्ग में आने से भरसक रोकते रहे। इसी बात को लेकर न जाने कितनी
बार हम में लड़ाई-झगड़े हुये। आखिरी वक्त अपनी मृत्यु शैय्या पर भी मुझसे
उन्होंने कहा था—'सुमित्रा, शीला की चिन्ता लिये मैं जा रहा हूं। योगेश
पर मुझे भरोसा है। उसी पर तुम शीला को छोड़ देना! तुम से मेरी यह
आखिरी बात है कि भूल कर भी अब शीला पर अपनी छाप डालने की कोशिश
न करना। शीला मेरी सच्ची बेटी बनेगी! मेरे अधूरे स्वप्नों को पूरा करेगी!'
मास्टरजी, उनके रहते जब मैं शीला को अपने पास न खींच सकी, तो उनके
बाद ऐसा करके उनकी आत्मा को दुख पहुँचाना भी मैंने उचित न समझा।
लेकिन अब तो शीला की पूरी जिम्मेदारी मुझ पर है। मैं चाहती हूं कि मेरे
जाते-जी शीला किसी अच्छे घर पहुँच जाय। अनिल बाबू में वे सब बातें हैं,
जो एक सम्पन्न, आधुनिक युवक में होनी चाहिये। रही बात उनके रहन-
सहन की, सो तो सम्बन्ध हो जाने पर शीला यदि उन्हें प्रभावित कर सकी,
तो आसानी से बदली जा सकती है।"

"आप ठीक कहती हैं। किन्तु इसमे खतरा भी तो है। यदि शीला ऐसा न कर सकी, तो?"

"तो भी कोई चिन्ता की बात नही! उसे अपने आदर्शों के अनुसार जीवन-यापन करने की पूरी स्वतन्त्रता होगी, जैसे शीला के पिता को मेरे रहते भी थी। क्या मै किसी तरह भी उनकी राह को बदलने में समर्थ हो सकी? सच्ची लगन होनी चाहिये, मास्टरजी!"

"लेकिन, माँजी आप भूलती हैं कि वह पुरुष थे!"

"स्त्री-पुरुष मे इस तरह भेद करना मै स्त्री की शक्ति का अपमान समझती हूं!"

"तो, माँजी, यह शीला की शादी न होकर उसके जीवन के साथ एक खतरनाक प्रयोग होगा! शादी का अर्थ दो अनुकूल हृदय का चिर-मिलाप दो समान शक्तियो की चिर-सन्धि है, न कि दो विरोधी भावनाओं का संघर्ष!"

"संघर्ष मे ही जीवन विकसित होता है, मास्टरजी! खैर, छोड़िये इन बातों को! मै अधिक बहस करना नही चाहती। मेरा सिर अब दर्द करने लगा है। अच्छा हो, यदि आप शीला को समझा दे। यह माँ-बेटी की लडाई नही, माँ-बेटी की इज्जत का सवाल है! यदि अनिल और शीला का सम्बन्ध टूट गया, तो मै सोसायटी मे सिर उठाने के काबिल न रहूंगी, और साथ-साथ शीला भी बदनाम हो जायगी। इसलिये, मास्टरजी, आप शीला को समझाये! वह आपकी बात मान जायगी!" कह कर माँजी ने अपना सिर कोच की पीठ पर डाल दिया। उनकी पलके चिन्ता-भार से बोझिल हो झुक गई।

योगेश की आँखे माँजी पर फैल कर रह गई।

३

योगेश का चेहरा तमतमा रहा था। उसकी लाल आँखो मे परेशानिया झलक रही थीं। सिर के बाल बेढगे तौर पर ललाट पर बिखरे हुये थे। न जाने कब से वह आराम-कुर्सी पर पडा-पडा शीला के ख्याल मे उलझता अपने को परेशान कर रहा था। अब वह अपने ख्यालो की परेशानियो से छुटकारा पाना चाहता था। उसने एक लम्बी साँस ले आराम-कुर्सी की पटरियो पर अपने पैर फैला दिये, और ललाट को हाथ से सहला कर, सिर एक ओर घुमा, हथेली पर कनपटी रखते हुये अपनी फूली हुई पलकों को बन्द करने की कोशिश की। लेकिन ख्याल उसके मस्तिष्क मे रेंग रहे थे। और उन ख्यालो की तस्वीरे, जो उसके सामने कमरे मे चल-चित्रो की तरह आ जा रही थीं, पलको को बन्द कर लेने पर जो गहन अन्धकार उसके मस्तिष्क में भर आया, उसमे विद्युत-चित्रो-सी अब भी डोल रही थी। उसने सिर दूसरी ओर घुमा दूसरी हथेली पर रक्खा। फिर भी चैन न मिला। आखिर घबरा कर उसने सिर झकझोरते अपनी भारी पलको को बरबस खोल दिया। अन्तर का अन्धकार बाहर के प्रकाश मे क्षण भर को खो गया। उसने आराम की एक साँस ली। खिडकी के शीशे से सन्ध्या की सुनहरी आभा कमरे मे प्रति-बिम्बित हो रही थी। योगेश ने एक बार उस ओर देखा। और फिर उसकी दृष्टि कमरे मे घूम गई, जिसमे सन्ध्या की सिन्दूरी मुस्कान भर गई थी। उसकी भारी पलके तनिक और ऊपर उठ गईं। सन्ध्या की सुनहरी किरणे उसकी लाल-लाल आँखों मे नारङ्गी डोरे बन झलमला उठी। एक हल्की मुस्कान उसके माँदे चेहरे पर थिरक गई। होंठ दोनों कोनों पर कुछ फैल गये। वह उठ खडा हुआ, और खिडकी के पास जा, शीशे के दरवाजों को खोल सुदूर खजूरो के झुण्ड के पीछे सन्ध्या की सुषमा देखने लगा। ..

"मास्टरजी!"...

"मास्टरजी !"

योगेश का ध्यान टूटा। मुड़ते हुये वह आश्चर्य से बोल पडा—"कौन ?"

उसकी आँखों के ठीक सामने दरवाजे की चौखटों की फ्रेम में मढी-सी शीला की स्वर्ण प्रतिमा सन्ध्या की आभा में प्रदीप्त हो उठी। वह आँखें मलकाता अनियन्त्रित-सा बोल पडा—"ओह! शीला, तुम !"

शीला चुप चाप खड़ी रही योगेश पर आँखें गडाये।

"आओ, आओ! बैठो, वहाँ कब से खड़ी हो ?"

"अभी आई हू," एक कुर्सी की ओर बढते शीला धीरे से बोली।

"मै आज आ न सका। जरा तबियत"..

"मै यही सोच कर तो चली आई कि कहीं आपकी तबियत खराब न हो गई हो। मै समझती थी कि आप बहुत थक गये है।" कुर्सी के अगले हिस्से पर जरा तिरछे बैठते शीला बोली।

"हाँ, थकावट तो मुझे है शीला, मगर वैसी नही जैसी तुम सोचती हो।"

"आपको आराम की सख्त जरूरत है, मास्टरजी! मै ठीक सोचती हू! देखिये न, आपकी आँखे कितनी लाल हो रही हैं! चेहरे पर भी थकावट के चिन्ह स्पष्ट हैं! आपको पूरे आराम"..

"आराम ? शीला, अब तो आराम ही आराम है! तुम्हारी परीक्षा के बाद तुम्हारी शादी की भीड़-भाड़ रह गई थी, वह भी परसों समाप्त ही हो गई। मुझे अब काम ही क्या रह गया है ? अरे हाँ, तुम लोग दिल्ली कब जा रहे हो ?" आँखों में कुछ छिपाते हुये योगेश बोला।

"अनिल बाबू की राय तो कल ही जाने की है," धीरे से शीला बोली।

"कल ही ? सुबह आठ बजे वाली ट्रेन से ?"

"जी !"

"ओह, तब तो, शीला, तुमने अच्छा किया, जो चली आई, वरना शायद मै तुमसे मिल भी न सकता !"

"क्यो ? आप सोचते थे कि शीला बिना अपने मास्टरजी के आशीर्वाद लिये ही ससुराल चली जायगी !" एक हल्का व्यग्य था शीला के शब्दो मे ।

"शीला, क्या तुम्हारे सामने भी मुझे शर्मिन्दा होना पड़ेगा ?" कह कर योगेश ने शीला की ओर आँखे उठाई । शीला ने देखा, योगेश की आँखो मे उसका प्रश्न जैसे एक दर्द बन कर उभर आया था। वह सह न सकी उसकी उस दृष्टि को । सिर हिलाते हुए वह बोल पड़ी— "नहीं-नहीं, मास्टरजी, ऐसा न कहिये ! यह तो मेरे दिल का दर्द है, जो आपके सामने भी एक व्यग्य बन कर उभर आया ! मुझे माफ करें !"

"शीला, तुम जानती तो हो कि यह सब कैसे हुआ । लोग कहते हैं कि कार्य करने या न करने की स्वतन्त्रता कर्मशील पर निर्भर करती है ! किन्तु, शीला, कर्मशील की भी अपनी परवशताये होती हैं, जिनके सामने वह कभी-कभी सिर झुका देने को मजबूर हो जाता है ! फिर भी गुजरे का मोह छोड कर आगे देखना कर्मशील का कर्त्तव्य है । परिस्थितियो से लडकर आगे बढना युवक-हृदय का धर्म है !"

"विपरीत परिस्थितियो से सघर्ष लेने में तो शक्ति का ह्रास होता है न, मास्टरजी ! अपने ध्येय तक पहुँचने के लिये जिस शक्ति का उपयोग होना चाहिये, उसी को, अपने कार्य को स्थगित कर, विपरीत परिस्थितियों से लडने मे खर्च करना क्या उचित है ?"

"यदि वे परिस्थितियाँ ध्येय की राह मे रोडा साबित हो, तो उन रोड़ो को दूर करने मे जो शक्ति लगाई जाती है, वह उचित ही तो है, शीला ! क्योंकि ऐसा करने मे ध्येय-प्राप्ति सुगम हो जाती है । आदमी को प्रारम्भिक स्थिति में ऐसा करना ही पड़ता है !"

"लेकिन यहाँ तो बात ही कुछ और है । अनिल बाबू, जो मेरी राह में इस तरह आ गये हैं, मेरे ध्येय-पथ मे रोडे न हो, मुझे मेरे ध्येय से पथ-भ्रष्ट

करने वाले हैं। क्या अपनी राह के प्रारम्भ में ही अपने कार्य से मुड़ कर मुझे जो उनसे संघर्ष लेना होगा, उसमें मेरी शक्ति का ह्रास और ध्येय-प्राप्ति में विलम्ब न होगा?"

"होगा! इसलिये तुम्हारे लिये दो राहें खुली हैं—एक यह कि तुम अपने कार्य को कुछ दिन तक स्थगित कर अनिल बाबू की भावनाओं से संघर्ष लो। लेकिन यह तभी ठीक होगा, जब तुम्हें विश्वास हो कि एक-न-एक दिन वह तुमसे प्रभावित हो, तुम्हारे सहयोगी बन, तुम्हारी राह ही पर आ जायँगे दूसरी यह कि तुम अनिल बाबू की चिन्ता छोड़ पूरी स्वतन्त्रता से अपने कार्य में ही लग जाओ।"

"आप ठीक कहते हैं। लेकिन पहली राह के विषय में, जब तक मैं उनको अच्छी तरह समझ नहीं लेती, कुछ निश्चय करना कठिन है और दूसरी राह कुछ खतरनाक दिखाई पड़ती है, क्योंकि वह मेरे पति हैं। वह अपना अधिकार जतायेंगे, और यह भी कोशिश करेंगे कि मैं उनकी इच्छाओं पर नाचूँ। मेरे ऐसा न करने पर यह भी सम्भव है कि वह मेरे जीवन से कटु खेल खेलने लगें!"

"ऐसा होने की भी पूरी सम्भावना है। पहले कुछ समय तुम्हें उन्हें समझने में देना ही होगा। इसलिये उस समय तक तो तुम अपने को किसी उलझन में डालो ही नहीं, जब तक कि उनके बारे में तुम्हारा निश्चय पक्का नहीं हो जाता। यदि उस समय तुम्हारे लिये केवल दूसरी राह ही खुली रह जाय, तो भी कोई चिन्ता नहीं। खतरे के डर से अपने जीवन-ध्येय का त्याग नहीं किया जा सकता! यदि किसी दुविधा या शंका के कारण तुम्हारे कदम डगमगाये, तो तुम्हारे मास्टर जी का हाथ तो तुम्हें सहारा देने को है ही, शीला!"

"मास्टरजी, क्या यह भी कहने की बात है? मैं जो कुछ भी अपने जीवन में कर पाऊँगी, उसका सारा श्रेय इन्हीं आपके हाथों को ही तो मिलेगा!"

"इसका मुझे गर्व होगा, शीला !" योगेश का सिर कहते-कहते गर्व से उठ गया।

"और यही मेरे लिये गौरव की बात है, मास्टरजी !" शीला का मस्तक मास्टरजी के प्रति हृदय की भक्ति से नत हो गया।

"अच्छा, तो अब तुम्हारी आगे की पढाई के बारे मे तुम्हारी अम्माँ की क्या राय है ?"

"अनिल बाबू की राय है कि मै दिल्ली से ही एम० ए० करूँ।"

"राजनीति से ही तो एम० ए० करोगी न ?"

"उनकी राय तो साहित्य से है। किन्तु मै अपना और आपका प्रिय विषय क्यो छोडने लगी !"

"ठीक ! यह साहित्य का युग नहीं है। आज तो राजनीति की कशमकश ही जिन्दगी की कशमकश हो रही है। खैर ! शीला, यह सब तो तुम समझती ही हो। अब कहो, कुछ जलपान करोगी ?"

"मास्टरजी, आज-कल मुझे खाना-पीना अच्छा नही लगता। फिर भी आपकी आज्ञा मै कैसे". शीला के हृदय की व्यथा जैसे फिर उभर आई।

"शीला," बात काटते योगेश बोल पडा—"मैने तुम्हें लाख समझाया, लेकिन देखता हू कि अब तक तुम अपने हृदय को समझा न सकी। मै मानता हू कि यह कोई ऐसी टीस नही जो किसी के समझाने-बुझाने से मिट जाय। फिर भी इस तरह कमजोर बन अपने को दुख के हवाले कर देना एक कर्मशील नारी को शोभा नहीं देता ! तुम क्या नही जानती कि मुझे स्वयं इस बात से कितनी व्यथा हुई है। एक कलाकार अपनी सुन्दरतम, महानतम कृति परिस्थियो से मजबूर हो जब किसी कुपात्र के हाथ सौपने जाता है, तो, शीला, क्या तुम नही समझती कि वैसा करने मे उसका कलेजा निकल आता है, उसकी आँखे खून के आँसू रोती हैं ! फिर भी मै शान्त हू !"

"यही तो आपकी महानता है, मास्टर जी !" शीला ने भर्राई हुई आवाज

में कहा। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे।

"जानती हो, शीला, मैं क्यों शान्त हूं? मैं शान्त हूं इसलिये कि कलाकार की कृति हीरा है! कुपात्र के हाथ में जाकर भी उसकी चमक मन्द नहीं पड़ती! वह चमकती रहती है अनन्त काल तक कोहनूर की तरह!"

शीला की भीगी आँखों में योगेश की बात जैसे कोहनूर का प्रकाश बन चमक उठी। वह आँखें मलकाते उठ खड़ी हुई। और आगे बढ़ योगेश के चरण छू हाथ माथे से लगा लिया। योगेश के दाहिने हाथ का शीला के सिर पर स्नेह-स्पर्श हुआ। शीला ने बरसती आँखें ऊपर उठाईं। योगेश ने उसे उठा कर उसके आँसू अपने हाथ से पोंछ दिया।

४

शीला ने आहिस्ते से दरवाजे खोल, सैण्डिल के पंजों पर कमरे के अन्दर हो, दरवाजों को धीरे से बन्द कर सिटकनी चढ़ा दी। फिर चोर की निगाहों से अनिल के पलंग की ओर देखती अपने बिस्तरे की तरफ बढ़ी।

"कौन?" अनिल ने बेड-स्विच दबाते आवाज दी। कमरे में प्रकाश भर गया। शीला जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गई गड़ी-सी।

"ओह, शीला, तुम!" बिस्तर पर उठ कर बैठता अनिल बोला। शीला ने सिर उठाया, और खट-खट अपने पलंग पर जाकर निर्भीक सी बैठ गई।

"शीला, कहाँ थी इतनी रात गये तक?" आश्चर्य मिश्रित शंका से शीला की ओर देखते अनिल ने प्रश्न किया।

शीला पैर उठा सैण्डिल खोलने में व्यस्त थी।

"यह क्या देख रहा हूं मैं?" कुछ झुंझलाहट का भाव था अनिल के

प्रश्न मे। शीला ने एक बार नजर उठा कर देखा उसकी ओर। फिर सैण्डिल को पलङ्ग के नीचे कर बिस्तर पर लेटने को हुई कि कुछ कडी आवाज आई अनिल की—"शीला, कुछ सुन रही हो तुम ?"

शीला ने कुहनियो पर टेक दिये, तनिक रुक कर अनिल को देखा, और लेट गई।

अनिल गुस्से मे उठ शीला के पलङ्ग के पास जा क्षुब्ध स्वर मे बोला—"शीला !"

"कहिये ?" शीला सहज भाव से बोली।

"जानती हो, इस वक्त कितने बजे हैं ?"

"बजे होगे दो !"

"तुम इस वक्त कहाँ मे आई हो ?"

"यह मै आपको बताना नही चाहती !"

"क्यो ?"

"क्योकि इसका आपसे कोई सम्बन्ध नही है ! मेरी व्यक्तिगत बातो मे आपको दखल देने का कोई अधिकार नही !"

"पति और पत्नी के जीवन मे कोई बात एक-दूसरे की व्यक्तिगत नही हो सकती ! विवाह का सम्बन्ध पुरुष और स्त्री के व्यक्तिगत अधिकारो को एक-दूसरे मे लय कर अधिकारो की एक इकाई स्थापित कर देता है !"

"होना तो ऐसा ही चाहिये। किन्तु ऐसा होने के पहले यह भी तो आवश्यक है कि पति-पत्नी किसी विशेष उद्देश्य के लिये एक हों, और उसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये एक-दूसरे मे मिल एक बलवती शक्ति का सङ्गठन करे। यदि पति-पत्नी के जीवन-उद्देश्यो मे सामजस्य न हो, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? आज ढाई वर्ष से मै आपके साथ रह रही हू। इतने दिनो मे मै अच्छी तरह से जान गई हू कि आपके जीवन का उद्देश्य 'खाओ, पीओ, और मौज करो है !' दो वर्षो तक तो मेरा विद्यार्थी जीवन ही रहा। आपकी

विशेष कृपा रही, जो आपने उस काल मे मुझे अपने मनोरञ्जन का सामान बना कर मेरे अध्ययन मे बाधा पहुँचाना उचित न समझा। अब मेरे एम० ए० कर लेने पर आपकी बेचैनी को चैन नही! आप चाहते हैं कि अब मै भी आपके मनोरञ्जन मे योग दूँ, और अपने जीवन का उद्देश्य आपके ही जैसा बना लूँ। किन्तु, अनिल बाबू, मुझे दुख है कि मै ऐसा न कर सकूँगी!" अपनी दाहिनी कुहनी तकिये मे गड़ा कर, हथेली पर सिर टेक, आँखे नीची किये ही शीला ने तनिक ऊपर खिसका कर पैरो को मोड़ लिया।

"शीला, मै कैसे कहूं कि तुमने गलत समझा है मुझे! मै तुम्हारी भावनाओ की इज्जत करता हू। तुम्हे अपनी राह चलने की पूरी स्वतन्त्रता भी प्राप्त है। अगर ऐसा न होता, तो तुम अपनी परीक्षा के बाद आज तीन महीनो से हर रात दस बजे से दो बजे तक मेरी नजर बचा कर जहाँ चाहती वहाँ न रह पाती। तुम समझती हो कि मुझे यह सब मालूम नही। लेकिन, शीला, तुम्हे मालूम नही कि मैं तुम्हारे बाहर जाने-आने की पूरी खबर रखता हू। तुम कहाँ जाती हो, क्या करती हो, यह भी मुझसे छिपा नही है। फिर भी कुछ कहने की गलती मैंने नही की, सिर्फ इसलिये कि तुम पर मुझे विश्वास है और जिस राह पर तुम चल रही हो वह भी मुझे पसन्द है। रही मेरे जीवन की राह, सो तो तुमने समझ ही ली है। किन्तु, शीला, तुम्हारी इस समझ मे मुझे कोई विशेषता नही दीख पड़ती। मै खाता हू, पीता हू, क्लबो और नाच-घरो मे घण्टों इस दुनिया से बेखबर रङ्गरेलियाँ मनाता हू। जो भी मेरी इन हरकतों को जानता है, वह बड़ी बेबाकी के साथ कह सकता है कि मै एक मस्त जीव हू। लेकिन, शीला, मेरा जीवन इस राह पर कैसे आ भटका? मै क्यों इस तरह जिन्दगी बसर कर रहा हू? मेरी जिन्दगी का भी कोई राज है? ये प्रश्न औरों के लिये कोई महत्व नही रखते। किन्तु तुम मेरी पत्नी हो, तुम्हारे लिये तो ये प्रश्न खोज के विषय होने चाहिये थे। लेकिन मुझे दुख है कि औरों की तरह तुमने भी मेरी हरकतो को देख यह

निश्चय कर लिया कि मै लम्पट हू। तुमने भी मेरी इन खुमार-भरी आँखों मे झाँक कर नहीं देखा कि इस खुमार के आवरण के पीछे कितनी बेबसी है, इन मेरे हमेशा मुस्कराते होठो को गौर से नही देखा कि इस मुस्कान के पीछे कैसा अट्टहास है, इस मेरे हृदय की अलमस्ती को छेद कर तुमने अनुभव करने की कोशिश न की कि इस हृदय मे कितनी व्याकुलता, कितनी व्यथा और कितना दर्द है!" कहते-कहते अनिल ने दिल थाम लिया। उसके मुँह से एक दबी-सी ठण्डी आह निकल गई।

शीला सन्नाटे मे आ उसकी ओर आश्चर्य-मिश्रित उत्सुकता से आँखे फैलाये देखती रही, जैसे उसके सामने कुछ अप्रत्याशित घटने जा रहा हो।

"शीला, अब तक मै चुप रहा। आज तुम्हारे सामने अपने दिल की भड़ास निकालना चाहता हू। सुन सकोगी तुम मेरी बाते?"

"हाँ-हाँ, आप कहिये!" अपने हृदय की उत्सुकता दबाते शीला ने धीरे से कहा।

"शीला, मै तुमसे अपने गुजरे जीवन की वे बाते कहने जा रहा हूं, जो दुनिया मे कोई भी पति अपनी पत्नी से कभी नही कहता। तुममे और औरतो की अपेक्षा कुछ विशेषता है, इसलिये ही मै यह सब कहने की हिम्मत अपने वैवाहिक जीवन के सुखो को खतरे मे डाल कर कह रहा हू। मुझे उम्मीद है कि तुम नासमझी से काम न ले सहृदयता से पेश आओगी।"

"आप इसकी फिक्र न करे। शीला के जीवन मे सस्ती भावनाओं और सामयिक आवेशो का कोई स्थान नही।"

"अच्छा, तो सुनो!" आँखो की पलके झुकाते अतीत मे गुम होता-सा अनिल बोला—"तुम्हे यह सुन कर आश्चर्य होगा कि यह अनिल, जिसके जीवन को तुम आज इस रूप मे देख रही हो, अपने कालेज-जीवन मे क्रान्तिकारी विचारो वाला एक उच्छृंखल युवक था, जिसने क्रान्ति के सपनो से अपनी आँखो को लिपटा देखा था, जिसने खून के फव्वारो मे अपने जीवन की रङ्गीनियाँ देखी

थी, जिसने सहस्रमुखी ज्वालाओं में अपने हृदय की कली को फूल बन खिलते देखा था, जिसने हँसती हुई कुरबानियों में जीवन का अमरत्व देखा था! किन्तु, शीला, वह आँखों के सपने थे, जो बिखर गये, वह जिन्दगी की रङ्गीनियाँ थीं, जो उड़ गई. वह हृदय की कली थी, जो मुरझा गई; वह जीवन की कुरबानी थी, जो हो न सकी—हो न सकी, शीला!" अनिल एक ठण्डी आह लेते रुक गया। उसकी आँखों को उसके दिल की पामाल हसरतें नम कर गईं।

शीला भोली बच्ची-सी उसे एकटक देख रही थी।

अनिल फिर बोला—"जानती हो, शीला, यह सब क्यों हुआ? यह सब हुआ एक नारी के कारण!" अनिल की आँखें जैसे भक से जल उठीं। शीला का मस्तिष्क झन्न-से कर गया, जैसे उसमें फूल की थाली अचानक झाँय से गिरने की आवाज गूँज गई हो। किन्तु इसके पहले कि अनिल उसके हृदय की प्रतिक्रिया को भाँप सके, वह सँभल गई।

अनिल फिर बोला—"हाँ, शीला, वह एक युवती ही थी, जिसने मेरे हृदय की आग को पानी कर दिया, जिसने मेरी आँखों की खून की लाली को खुमार में बदल दिया, जिसने मेरे जीवन को क्रान्ति की राह से हटा प्रेम की डगर में खींच लिया। जवानी का नशा था, हृदय का पागलपन था। मैं अन्धा हो अपनी राह से भटक गया।"

"फिर?" शीला ने पूछा।

"फिर जीवन की राह पर पूनो की चाँदनी बिछ गई। वह और मैं एक दूसरे में गुँथे-से चाँदनी की बिछलन में जगह-जगह फिसलते चल पड़े। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु हमारे दिलों को गुदगुदाने लगी। संगीतमय वातावरण हमारे कानों में ईमन की तानें भरने लगा। वृक्षों की मस्ती में झूमती शाखायें हमारी आँखों में प्रेमासव छलकाने लगीं। हम आत्म-विभोर हो डगमगाते कदमों से आगे बढ़ते गये—बढ़ते गये!"

"फिर ?"

"फिर फिर अचानक समाज ने मेरी बाँहों को झिंझोड़ कर उसे मुझ से छीन लिया। चाँद छिप गया। राह पर भयावना अन्धकार छा गया। मेरी दुनिया उजड़ गई। हृदय टूट गया। आँखें वीरान हो गई।" कहते-कहते अनिल का चेहरा व्यथा से विकृत हो गया।

शीला की आँखें भर आईं। भीगे स्वर में वह बोली—"उसके बाद ?"

"उसके बाद की कहानी मेरी बरबादी की कहानी है। अपनी व्यथा को बहलाने के लिये मैंने क्लबों और नाचघरों का सहारा लिया, अपने हृदय को भुलाये रखने के लिये मैंने सुरा की मदहोशी में अपने को डुबा दिया, अपने जीवन में व्यस्तता लाने के लिये मैंने नौकरी कर ली। धीरे-धीरे समय मेरे जख्मी दिल पर मरहम लगाता गया। विस्मृतियाँ व्यथा के अंकुर नष्ट करने लगीं। पिछली बातें धीरे-धीरे धुँधली हो चलीं। जिन्दगी एक राह पर आ टिकी। दिन कुछ मजे में कटने लगे। आशायें फिर अपना जाल बुनने लगीं। लालसा ने अपना सिर उठाना शुरू कर दिया। जीने का मोह जागा। जिन्दगी को नये तरीके से गुलजार करने की इच्छा प्रबल हो उठी।" दम लेने के लिये अनिल रुका।

"उसके बाद ?" शीला तन्मय-सी बोली।

"उसके बाद शिमले की एक उँजेली रात के रुपहले वातावरण में एक पार्टी के बीच तुम लोगों से मेरी मुलाकात हुई। तुम्हारी अम्माँ की आँखों में न जाने मेरी कौन-सी बात खुब गई कि उनकी भावनाओं में मैं बैठ गया।' उन्होंने तुम्हारे विषय में मुझ से प्रस्ताव किया। मैंने तुम्हारी आँखों में अपने प्रारम्भिक यौवन-काल के सपने देखे। वे सपने पुन मेरी आँखों के सामने चित्रमय हो थिरक उठे। मैंने हठात् हाथ बढा दिये। तुम मेरे जीवन में खिंच आईं। मेरा हृदय प्रफुल्ल हो खिलखिला उठा। किन्तु मैंने संयम और सब्र से काम लिया। तुम्हारे उगते जीवन को पनपने की पूरी स्वतन्त्रता दी। तुम

एम० ए० कर चुकीं। तुम्हारे जीवन की प्रारम्भिक तैयारी खत्म हुई। तुमने अपने कर्म-क्षेत्र मे प्रवेश किया। तुम्हारी शक्ति-सङ्गठन की योजनाये, विद्यार्थी सघ की कल्पनाये, देश के कोने-कोने मे राजनैतिक जागरण उत्पन्न करने के लिये साहित्य निर्माण की बातें, सब मै सुन चुका हूं। मै अपनी मुस्कराती आँखो से हृदय का हर्ष दबाये तुम्हारे कार्य-कलापो को देखता रहा। आज हृदय की उमगे बरबस जोर पर आ गई। मै अधिक अपने को सभाल न सका। भावो के आवेश ने मुझे इस तरह तुम्हारे सामने लाकर खड़ा कर दिया। बोलो, शीला, क्या मेरे सपने सपने ही रह जाँयगे ?" आखो मे कुछ छिपाने अनिल ने शीला की ओर हाथ बढा दिया। शीला ने उसका हाथ अपने हाथ मे ले जोर से दबाते हुये कहा—"तुम बड़े वो हो ! पहले ही तुमने यह सब मुझसे क्यो न बता दिया ? मेरा हृदय जो तुम्हारे भय के भार से दबा-सा रहता था, आज पूर्णरूप से उन्मुक्त हो गया। आज मै खुश हूं, बहुत खुश, अनिल !" शीला की आँखो मे खुशी छलक पडी। आवेश मे उसने अनिल को अपनी ओर जोर से खींच लिया। कमरे मे दोनो की खिलखिलाहट गूँज उठी, जैसे ज्वाला की गोद मे क्रान्ति खिलखिला उठी हो !

५

"शीला ! शीला !" चिल्लाता हुआ अनिल शीला के अध्ययन-कक्ष की ओर दौड़ पड़ा।

शीला ने मुस्कराती आँखे किताब से उठाई।

अनिल शीला के कन्धो को पकड़ कर खुशी के पागलपन मे झकझोरता हुआ बोला—"मास्टरजी"

"मास्टरजी !" शीला की आँखे एक-ब-एक खिल उठीं। अनिल को पीछे छोड वह ड्राइङ्ग-रूम की ओर हाथ मे किताब लिये ही बेतहाशा भागी।

योगेश शीला को देख खडा हो गया। शीला योगेश से सट कर, हाथ जोडे, सिर झुकाये, हृदय की उत्फुल्लता छाती मे दबाये हुए खडी हो गई। योगेश की स्नेह-भरी उँगलियाँ शीला के बालो मे फिरने लगीं। दो क्षण को दोनों खो गये। अनिल दरवाजे पर खडा इन स्नेह-मूर्त्तियों का रस-भरा, अपूर्व मिलन भलकती आँखों से देखता रहा, देखता रहा जब तक कि उसके हृदय के विह्वल हर्ष के रस मे उसकी आँखे भीग न गईं।

"शीला !" स्नेह-सिक्त था योगेश का सम्बोधन।

"मास्टरजी !" प्यार मे डूबा हृदय से निकला वह शब्द।

"बैठो !"

बैठ गई शीला पास की कोच पर।

बगल की कोच पर बैठते योगेश ने देखा, दरवाजे पर अनिल खोया-सा खडा था। वह बोला—"आइये न, अनिल बाबू ! आप वहा कैसे खडे हैं ?"

अनिल जैसे किसी मीठे सपने मे चिहुक कर बोला—"आप शीला से तब तक बाते कीजिये। मै आपके जलपान"

"अरे इसकी क्या " योगेश के वाक्य पूरा करने के पहले ही अनिल भाग गया। शीला ने एक तिरछी नजर से योगेश की ओर देखते मुस्करा दिया।

"शीला, उन्हें बुलाओ न !"

"क्यो ? उनके सन्तोष के लिये भी तो कुछ चाहिये। अच्छा, मास्टरजी, मेरा पत्र तो आपको मिल गया था न ?"

"हाँ।"

"आप आ गये, यह बडा अच्छा हुआ ! मै आपको देखने को तडप रही थी !"

"शीला, मै तो इसी वक्त के इन्तजार मे था। मैं सोच रहा था कि एक दिन ऐसा जरूर आयेगा, जब तुम दोनो मिल कर मुझे एक आवाज से पुकारोगे, जब तुम दोनो अपनी नजरे मिला कर मेरे आने की खुशी मे हँस दोगे! तुम दोनो को इस तरह देख आज मुझे कितनी खुशी हो रही है! मेरी मनोकामना की लता जैसे आज पुष्पित हो मेरी आखो के सामने झूम रही है! मेरा हृदय फूला नही समाता, शीला!"

"यह तो सब आपके आशीर्वाद फल रहे है, मास्टरजी! अच्छा, अम्माँ तो अच्छी है न?"

"हाँ, वह भी बहुत खुश हैं! आने के पहले मै उनसे मिला था। पुरानी बातो की याद दिलाते हुए उन्होने कहा—'देखा, मास्टरजी, मेरा चुनाव सफल रहा न?' मैने कहा—'माँजी, आप सचमुच अद्भुत पारखी है!' सुन कर वह हँसने लगी। लेकिन हाँ, एक बात है, उनको अनिल बाबू का नौकरी से इस्तीफा देना कुछ जँचा नहीं। मैने कहा—'माँजी, जो कुछ आपके पास है, वह क्या शीला और अनिल बाबू के लिये कम है? और दूसरा है ही कौन उसे भोगने वाला?' इस पर वह हँस पड़ी।"

"यहा आने को नहीं कह रही थी? उनकी याद मुझे बहुत सताती हैं, मास्टरजी! उनके प्रति जो क्षोभ मेरे हृदय मे भर गया था, वह तो जैसे अब श्रद्धा मे बदल गया है। मेरे बगैर घर उनको कितना सूना-सूना लग रहा होगा! उन्हे भी आप क्यो नही लेते आये? थोड़े दिन रह कर फिर चली जाती।"

"आने को तो वह भी कह रही थीं, शीला, मगर मैने ही रोक दिया। उनका स्वभाव तो तुम जानती ही हो। और . और .." आँखो मे कुछ छिपाता-सा योगेश रुक गया।

"और क्या, मास्टरजी? आप रुक क्यो गये?" उत्सुक हो उठी शीला।

"क्या यह भी तुम्हे बताना होगा, शीला?"

"मास्टरजी आप साफ-साफ क्यो नही कहते ?" शीला की उत्सुकता चैन हो उठी।

"आकाश पर छाये हुये घने-घने बादलो को तुम नही देख रही हो ?" म्भीर होता योगेश बोला।

"ओह, यह मतलब है आपका !"

"हाँ, शीला, देश अब चुप नही रहेगा ! बहुत सब्र किया इसने। युद्ध ी ज्वाला धू-धू कर रही है ! देश के नौजवान लपटो मे जूझने के लिये भेजे ा रहे हैं। देश इन नौजवानो की कीमत माँगेगा ! इन कुरबानियो का दला चाहेगा ! देश के नेता सरकार का द्वार खटखटायेंगे !"

"फिर ?"

"फिर क्या होगा, कुछ नही कहा जा सकता। भविष्य धुँधले पर्दे से ँका है। अभी इसको मेरी आँखे छेदने मे असमर्थ हैं।"

"मास्टरजी, मेरी आँखे तो देख रही हैं कि क्या होगा !" एक मेज खीच र योगेश के सामने जलपान का ट्रे रखते अनिल बोला।

"ओह, अनिल बाबू ! ..आपका क्या ख्याल है ?"—योगेश ने कहा।

"नतीजा वही होगा, जो अब तक होता आया है ! मै तो कितनी बार ही बात लेकर शीला से झगड़ चुका हू। यह भी आप ही की शिष्या है न ! प्राप लोग तो बस सरकार के दरवाजे पर सदा लगाते रहेगे ! अरे, मास्टरजी, कही इस तरह माँगने से आजादी मिलती है ?"

"तो क्या आपका ख्याल है कि इस बार भी सरकार देश की माँग ठुकरा देगी ? अनिल बाबू, आप इतनी निराशावादिता से क्यो काम ले रहे हैं ?"

"आशावादी होना बुरा नही, मास्टरजी ! किन्तु आशाओं के ही आधार पर देश का भविष्य नही छोड़ा जा सकता। और फिर सरकार की परिस्थिति इस देश मे आप जैसी बुरी समझते हैं, वैसी नही है। परिस्थिति बदलने के लिये सरकार की एक चाल काफी होगी। जनता मुँह ताकती रह जायगी !"

"जनता की बुद्धि और शक्ति मे मै अविश्वास नही कर सकता, अनिल बाबू! फिर भी हमे आने वाली विपम परिस्थिति को ही दृष्टि में रख कर जनता को तैयार करना है। जनता का सगठन, जनता की शक्ति हमारे नेताओ की माँग को वल देगी।"

"परसो 'जन जागरण सभा' की बैठक है। उसमे हम अपने अन्य सहयोगियों के साथ इस विषय पर क्यो न चर्चा कर के अपना कार्य-क्रम निश्चित कर आगे कदम बढाये? मास्टरजी, आप तो अभी रहेगे न?"—शीला ने कहा।

"हाँ, मैने तीन महीने की छुट्टी ले ली है। तब तक मैं तुम्ही लोगो के साथ रहूंगा। मै सोचता हू कि इसी के बीच कुछ-न-कुछ हो कर रहेगा। ऐसे मे मै तुम लोगो को अकेले नही छोडना चाहता!"

"मास्टरजी, आपका नेतृत्व और सहयोग हमारे लिये अमूल्य सिद्ध होगा!" शीला बोली।

"अच्छा, शीला, तू तो आते ही मास्टरजी का दिमाग चाटने लगी। इन्हें कुछ जलपान तो कर लेने दे!"—हँसता हुआ अनिल बोला।

"अरे, हाँ-हाँ! मास्टरजी, अब आप"

योगेश ने तश्तरी की ओर हाथ बढाया। शीला प्याली मे चाय ढालने लगी।

६

वर्षा की अँधेरी रात आकाश मे छाई घनी घटाओ के नीचे उसाँसे भर रही थी। रह-रह कर आकाश मे बिजली बादलो का सीना चीरती-सी कौंध जाती। बादल चीत्कार कर उठते। सारा वातावरण त्रस्त-सा थर्रा उठता।

हवा के झोंके पेड़ों की डालों को झकझोरते निकल जाते। पेड़ों की पत्तियाँ टूट-टूट कर हवा में फड़फड़ाने लगती।

दरवाजों और खिड़कियों को बन्द किये कमरे में योगेश कुर्सी पर सिमटा-सा हाथ में एक किताब खोले बैठा था। बिजली की थकी-सी रोशनी कमरे में जैसे ऊँघ-सी रही थी। चिन्तित-सा योगेश अपने को किताब में भुलाने का असफल प्रयास कर रहा था। उसकी बगल में मेज से तनिक हट कर आराम-कुर्सी पर ही शीला पैर सिमेटे सो गई थी। उसकी छाती पर खुली किताब पट पड़ी थी। पीली रोशनी में उसके चेहरे पर थकावट के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे। कुछ अस्त-व्यस्त बाल उसके ललाट और गालों पर बिखरे परेशानियों की रेखाओं-से प्रतीत हो रहे थे। उसकी आँखों की फूली पलकों पर कड़ी मेहनत ने एक हल्की स्याही-सी फेर दी थी।

योगेश की करुणा-भरी आँखें रह-रह कर किताब से हट कर शीला के माँदे चेहरे पर उठ जाती हैं। शीला का वह श्रान्त रूप जैसे उसके हृदय में एक व्यथा की टीस उठाता सा कसक जाता है। वह पलकें मूँदता किसी ख्याल में खो-सा जाता है। उसके अन्तर में एक द्वन्द्व-सा मचने लगता है। वह विचारों में डूबा ही डूबा सोचता है—'कर्तव्य कितना निष्ठुर और सेवा कितनी करुण होती है! कुसुम-सी कोमल शीला क्या काँटों से अपना दामन उलझाने के लिये पैदा हुई थी? नवनीत-सा स्नेह-भरा उसका हृदय क्या चिन्ताओं की आँच के सामने पल-पल गलने के लिये था? उसकी गीत-भरी आवाज क्या किसी मंच पर खड़े हो गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने के लिये थी? योगेश, यह तुमने क्या किया? शीला, जो किसी की रानी बन कर उसके हृदय में रूप का माधुर्य, उसके प्राणों में प्यार के गीत, और उसकी आत्मा में सौन्दर्य का आनन्द भरने के लिये पैदा हुई थी, उसे तुमने किस हृदय से नुकीले ककड़ों-भरी राह पर घसीट लिया?' और शीला के खून से लथपथ पैर जैसे योगेश की आँखों में उतर

आये। योगेश की आत्मा पुकार उठी—'शीला! शीला!' उसने मेज पर सिर पटक दिया। उसका हृदय एक व्यथा से ऐंठने लगा। आँखों से वेदना के आँसू झरने लगे। सिसकते-सिसकते न जाने कब उसकी आखें लग गईं।

"मास्टरजी! मास्टरजी!" शीला डरी हुई आँखें खोल कर चिल्ला उठी।

योगेश नींद से चौंक पड़ा। आँखें मलते हुए बोला—"शीला, तुमने पुकारा है मुझे?"

"मास्टरजी!" सहमी आँखें योगेश की ओर उठाते शीला फिर चिल्लाई। योगेश उसके पास झुक कर उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोला—"क्या हुआ, शीला?"

"मास्टरजी, सपना"..हाँफती हुई शीला बोली।

"कैसा सपना?"

"बड़ा डरावना, मास्टरजी, बड़ा भयानक!"

"दुत पगली! ऐसे भी कहीं डरा जाता है?" शीला के ललाट के बाल ऊपर करते योगेश ने कहा।

"नहीं-नहीं, मास्टरजी! मैंने देखा" .भय से शीला सहम गई।

"क्या देखा, मुझ से कह न!" मुस्कराते हुये शीला का गाल थपथपा योगेश बोला।

"मैंने देखा, मास्टरजी, कि मेरे घर में किसी ने आग लगा दी है। लपटों की लपलपाती जिह्वा हमारी ओर बढ रही है। मैं और अनिल पास-ही-पास सोये हैं। अनिल की नींद खुल जाती है। वह मुझे हाथों में ले लपटों से बाहर निकलने को भागता है कि कुर्सी से टकरा कर मुझे लिये धड़ाम से गिर जाता है। ज्वालायें हू-हू कर हमें भस्म करने को बढती हैं। मैं अनिल से लिपटी चिल्ला पड़ती हूं—'मास्टरजी! मास्टरजी!' आप न जाने कहाँ से लपटों के बीच निकल आते हैं। और एक बगल में मुझे और दूसरी बगल में अनिल को दाबे लपटों से लड़ते हमें बाहर निकाल लाते हैं। बाहर आते

ही, मास्टरजी, आप आप' कहते-कहते शीला अपनी आँखों को हाथों से ढाँपती फूट पडी।

"शीला, अरे, तू सपने मे घबरा गई? देख-देख, मै तो तेरे सामने खडा हू! उठ, चल, बिस्तरे पर सो रह! तू बहुत थक गई है!"—योगेश ने शीला का हाथ पकड उसे उठाते हुये कहा।

शीला खडी हो गई। योगेश ने उसके आँसू अपने कुरते के दामन से पोंछ दिये।

"मास्टरजी, अनिल बाबू कहाँ हैं?"

"तुम्हारे सामने ही तो ए० पी० के आफिस गये थे लाहौर का समाचार लाने।"

"अभी तक वह नहीं आये क्या?"

"समाचार अभी नहीं मिला होगा। वह आते ही होंगे चलो, तुम सो रहो!"

शीला को बिस्तर पर लेटा, उसे कम्बल से अच्छी तरह ढँक, उसकी पलकों पर हाथ फेरते योगेश ने धीरे से कहा—"अब तुम आराम से सो रहो! मै अनिल बाबू का इन्तजार करूँगा।"

योगेश जब वहाँ से हट ड्राइङ्ग-रूम मे आया, तो जैसे शीला का सपना सच्चा हो उसकी आँखो के सामने नाच उठा। एक व्यथा-भरी मुस्कान उसके होठों के कोनों पर फिर गई। वह अपने ही से बुदबुदा पडा—"पगली, तेरे मास्टरजी का ऐसा सौभाग्य कहाँ?"

"मास्टरजी!" अनिल ने दरवाजा खटखटाते पुकारा।

योगेश अकचका कर उठ पडा। हडबडाया-सा दरवाजा खोल पूछ बैठा—"क्या समाचार लाये, अनिल बाबू?"

अनिल सामने शून्य मे आँखे टिकाये चुप रहा।

योगेश उसकी आँखों की शून्यता देख फक-सा पड गया।

अनिल सिर झुकाये काच की ओर बढ़ा, और माथा हाथ पर टेक कर बैठ गया। एक लम्बी साँस उसके मुँह मे निकल गई।

योगेश उसके सामने की कोच पर बैठ तनिक देर उसकी ओर देखता रहा। फिर सूखे गले से बोला—"अनिल बाबू! आप मुझसे कुछ कहते क्यो नही?"

अनिल ने धीरे से सिर उठा एक क्षण योगेश की ओर सफेद आँखो से देखा। फिर घुटती आवाज मे बोला—"क्या बताऊँ, मास्टरजी?"

"अनिल बाबू, यो हतोत्साह होना आपको शोभा नही देता! आप बोलिये न, क्या समाचार आया है?"

"मास्टरजी, मेरी आखो के सामने तो जैसे गहन अन्धकार छा रहा है! मै किंकर्तव्य-विमूढ-सा हो रहा हूं। आप भी वह समाचार सुनेंगे, तो आपकी भी यही दशा होगी। मेरी तो समझ मे नहीं आता कि सरकार ने आखिर क्या समझ कर ऐसा कदम उठाया है।"

"क्या हुआ? आप साफ-साफ क्यो नहीं कहते? कर्मयोगी जहाँ शुभ समाचार सुन कर हर्षित नहीं होता, वहाँ दुखद समाचार सुन कर भी उसकी भौहो पर बल नही आता! हम मे कमजोरी जरूर है, किन्तु कमजोर हृदय के सामने हम घुटने टेकने के लिये तैयार नही! आप एक वीर सैनिक की तरह क्यो नहीं एक वीर सैनिक से मैदान का समाचार सुनाते? बोलिये!"

"अच्छा तो सुनिये, मास्टरजी! हमारे नेता एकसाथ गिरफ्तार कर लिये गये!" वाक्य पूरा होते ही जैसे कमरे का वातावरण सन्न-सा रह गया। योगेश के सामने जैसे एक पहाड़ भहरा गया। क्षण भर के लिये जैसे उसके हृदय की गति रुक गई।

"बोलिये, मास्टरजी, अब क्या होगा?"

"यही प्रश्न तो मेरे दिमाग को बौखला रहा है! चन्द घण्टो के बाद जब खूनी सुबह की कातिल हवा इस लाल खबर को सारे देश मे फैला देगी,

तो क्या होगा ?"

"देश दिवाना हो जायगा, जनता पागल हो उठेगी। सरकार को मालूम नहीं कि देश के नेता जनता के कितने प्यारे हैं।"

"फिर ?"

"फिर वही होगा, जो चोट खाने के बाद अन्धा हो कर शेर करता है।"

"नतीजा ?"

"नतीजा सयोग पर अवलम्बित है। हो सकता है कि शेर शिकारी को मार डाले, या यह भी सम्भव है कि शेर शिकारी की गोलियो का".

"नही, नही, अनिल बाबू, ऐसा न कहिये। हम जनता को पागल न होने देगे।"

"जनता अन्धी होती है। उसके प्रबल वेग को रोकना मानवी शक्ति के वश की बात नही।"

"हम उसे भरसक रोकने की कोशिश करे गे। हम अहिसा का खून न होने देगे। नेताओं की अनुपस्थिति मे हम उनकी नीति की अवहेलना कर उसके नाम पर धब्बा न लगाने देगे। सरकार का विरोध हम शान्ति-पूर्वक प्रदर्शन से करे गे। हमे असीम धैर्य और अपार शान्ति से काम लेना होगा। हमे अपने स्वयसेवको को भी ऐसा ही आदेश देना होगा। समय कम है। हमे अभी से इस कार्य मे जुट जाना चाहिये।"

"हाँ हम अभी चलेगे। शीला कहाँ है ?"

"शीला, बहुत थक गई है। उसे थोड़ी देर और आराम कर लेने दो। तुम भी अभी यही रहो, नही तो शीला उठने पर हम दोनो मे से किसी को न पा घबरा जायगी। किन्तु देखना, शीला कही धैर्य न खो बैठे। उसके सामने तुम्हे भी साहस से काम लेना होगा। मै जल्द से जल्द लौटने की कोशिश करूँगा।"

योगेश कमरे से बाहर हो लम्बे डग भरता अँधेरे मे मिल गया।

७

वातावरण मे भीषण आतंक छाया हुआ था। हवा में विद्रोह की चिन-गारियाँ छिटक रही थी। आकाश से सूर्य अपनी खूनी आँखों से धरती को घूर रहा था। जुलूस जन-सागर की अनन्त लहरों-सा उद्दाम गति मे राजपथ पर बढ रहा था। हजारों नर-मुण्डों के ऊपर तिरंगे झण्डे हवा मे लहरा रहे थे। जनता की आँखो से शोले फूट रहे थे। क्रोध से उनकी भौंहे तन रही थीं। योगेश, शीला और अनिल जुलूस के आगे-आगे भयानक धैर्य और साहस से जुलूस का शान्तिपूर्वक सचालन कर रहे थे। स्वयंसेवक ओज-भरे स्वर मे गा रहे थे। उनकी देश-प्रेम में डूबी पक्तियाँ फिजा मे गूँज रही थी—

'मुल्क पर कुरबान होना शेर-दिल का काम है,
उट्ठो, उट्ठो! नौजवानो! मौत का पैगाम है!'

जुलूस बढ रहा था। इनकलाबी नारे शेरों की चिंघाड़ की तरह धरती आकाश को कँपा रहे थे। तिरंगे झण्डो पर सूर्य की किरणे विद्युत-रेखाओं-सी चमक रही थी। हवा के झोंके उनमे फड़फडा रहे थे। गीतो की गूँज फिजा मे थर्रा रही थी। स्वयसेवक गा रहे थे—'हम कैसे जवाँ हैं भारत के, यह दुनिया को दिखा देगे!' ..

जुलूस चौराहे पर प्रबल वेगवती धारा की तरह मुड़ा कि किसी का गर्जन हवा को चीरता हुआ आया—"जुलूस रोक दो!" सामने सशस्त्र घुड़सवार सैनिको की कतारें सड़क रोके थी। योगेश ने जुलूस की ओर मुँह करके स्वयसेवको को आदेश दिया—"जुलूस रोक दो!"

जुलूस मे खलबली मच गई। जन-धारा प्रवाह की राह न पा किनारो को तोड़ने-फोड़ने लगी। विकराल लहरों-सा गर्जन हुआ—"हम नही रुक सकते! हमारा रास्ता छोड़ दो!" ..

"रुक जाओ!" योगेश, शीला, अनिल और सैकडों स्वयसेवक गला

फाड-फाड कर चिल्लाने लगे। खतरे की भयानकता उनका [illegible]
रही थी। जुलूस के सामने हाथ फैलाये वे सीनों का जोर लगा, पीछे पैर अड़ाये बढ़ती हुई जनता को रोक रहे थे।

"हमे कोई नही रोक सकता! हम आगे बढेगे!" एक .. हुँकार के साथ हजारो मुट्ठियाँ हवा मे उठ गईं। फिजा दहशत मे लरज गई। भीड ने जोर मारा। रोकने वालों के कदम उखड़ने लगे। ..

सैनिकों की आँखों मे बिजलियाँ चमक उठी। उनके हाथो मे सगीनें खनक उठी। हुक्म हुआ—"फायर!"

सनसनाती हुई गोलियाँ हवा को चीरती आसमान मे धुआँ भर गईं।

जन-सागर मे तूफान उठ गया। उन्मत्त लहरें फुफकारती हुई प्रलय वेग से बढी। अग्रिम पक्ति टूटने ही वाली थी कि फिर आवाज आई—"फायर!"

अनिल शीला के आगे पीठ कर सामने खडा हो गया। गोलियाँ सनसनाईं, और करीब था कि अनिल के सीने मे गोली पैवस्त हो जाती कि योगेश अनिल के सामने आ गया! शीला चिल्लाई—मास्टरजी! मास्ट"

मास्टरजी अनिल के कन्धे पर आ रहे। स्वयंसेवक लपके। मास्टरजी का सीना रङ्ग गया।

.. ..

सेवा-समिति के हरे-भरे मैदान मे सैकडो की भीड के बीच स्ट्रेचर पर शहादत की चादर ओढे योगेश शान्त पडा था। सन्ध्या की सुनहरी किरणें उस पर सोने का तार बुन रही थी। उसके चेहरे पर देश-प्रेम मुस्करा रहा था। उसकी शहादत पर अमरत्व न्यौछावर हो रहा था! लोगो के चेहरो पर ठण्डी उदासी छाई हुई थी। अनिल फफक-फफक कर रो रहा था। शीला की आँसू-भरी आँखे योगेश के मुस्कराते चेहरे पर हसरतो की वर्षा कर रही थीं। सहसा उसकी बरसती आँखों मे उसका पिछली रात का सपना उतर आया। उसकी आँखों मे लपटे जल उठी! उन लपटो मे अनिल और शीला घिर

गये। मास्टरजी उनको अपनी बगलों में दबाये लपटों से निकाल लाये। बाहर आ कर मास्टरजी ..

शीला ने एक ठण्डी आह ले आँखें आकाश की ओर उठाई। आँसू की धारें उसके गालों पर बहने लगीं। उस समय सूर्य संसार से बिदा ले रहा था।

आखिरी प्याला

"नमस्ते !" दरवाजा खुलते ही उतावला-सा अन्दर होते हुए अरुण हाथ जोड़ कर बोल पड़ा।

अरुण को अचानक सामने देख रीता की आँखे फैल गई, और उसके चेहरे पर आश्चर्य की रेखाये अंकित हो गई।

"ओह, आप हैं ! क्षमा कीजियेगा, मैंने सोचा नीना होगी," अपने गले की टाई को हाथ की उँगली मे लपेटता, रीता की ओर मुस्कराती दृष्टि से देख अरुण ने कहा।

रीता की लम्बी पलके झुक गई। वह मुँह फेर कर सिर झुकाये ही किवाड को नाखून से कुरेदने लगी।

"कहाँ है नीता ?" घर के अन्दर की ओर आँखे फेर कर अरुण बोला—"सूना-सूना-सा दिखाई दे रहा है। कही गये हैं लोग क्या ?"

घटाये घिर आई रीता की अधखुली आँखो मे। गला रुँधने लगा उसका।

"अरे, आप बोलती क्यो नहीं ?" रीता की ओर मुड कर, उस पर आँखे जमा पूछा अरुण ने।

घनी हो गई रीता की आँखो की घटाये। व्याप्त होने लगा अन्धकार उसके मस्तिष्क मे। एक गरम साँस निकल गई उसके मुँह से हृदय की व्यथा की जलन लिये।

अरुण की भौहे सिकुड गई। उसके चेहरे से खुशी का रङ्ग उड़ गया।

धड़कने लगा उसका दिल। अन्तर की विकलता में तड़पता बोला वह—
"रीता देवी, मेरी नीता तो सकुशल है?"

रीता का झुका हुआ सिर धीरे से हिल गया। उसकी व्यथा-भार से बोझिल पलकें झुक गई। ऐंठता हृदय कसक उठा। बरस पड़ी आँखों मे छाई घनी घटायें। झरने लगी वेदना की बूँदे झर-झर।

अरुण की व्यग्रता मे तड़पती हुई दृष्टि झुक कर फर्श पर बिछ गई। रीता के हृदय के पिघले दर्द की बूँदे फर्श पर फैल कर दृष्टि-पथ से उठ, अरुण के हृदय मे पहुँच, एक तड़पन बन, व्याप्त हो गई। कचोट उठा उसका कलेजा। छा गई किसी आशंका की भयंकरता उसकी सिकुड़ी आँखो में।

धीरे से रीता के पैर उठे। फफकती आँखो को आँचल से पोछ; भीगे हुये फड़कते निचले होठ को दाँतो से दबाये वह अन्दर की ओर काँपते कदमो से बढ़ी। आखों मे विकराल स्थिरता लिये सामने शून्य मे निश्चल दृष्टि गड़ाये चला अरुण उसके पीछे-पीछे, जैसे उसकी आँखो के सामने किसी ऐसे हृदय-विदारक दृश्य का परदा अचानक उठेगा कि जिसे देख कर उसकी आँखे पथरा जायँगी, उसके हृदय की धड़कन एक-ब-एक बन्द हो जायगी।

आँगन को तिरछे पार कर, बगल के कमरे के सामने रुक, आँचल से मुँह पोछ कर, एक लम्बी साँस ले, कसकते हृदय को थाम, रीता धीरे से कमरे के भिड़े दरवाजो को खोल कर, हल्के-हल्के कदम रखती प्रवेश कर, एक ओर हो खड़ी हो गई। अरुण की आँखो की शून्यता मे बिजली तड़प गई। मस्तिष्क सन्न-से कर गया। हृदय की गति एक क्षण के लिये रुक गई। सामने अस्त-व्यस्त बिस्तर पर पड़ी थी विक्षिप्त-सी नीता, जैसे उसकी नस-नस मे व्याप्त व्यथा छटपटाते-छटपटाते थक कर, शिथिल हो टुक सो गई हो, जैसे एक हरी-भरी लता भयंकर आँधी के झोको से छिन्न-भिन्न हो टूट कर भूमि पर गिर गई हो, जैसे एक अधखिली कली लू के थपेडो से कुम्हला कर

मुरझाये पत्तो की गोद मे अपनी टहनी से लटक गई हो।

अरुण की फैली आँखो के सामने भयावना अन्धकार छा गया। उसके जबड़े जकड गये। सूखते गले के नीचे कुछ उतर गया। वह अनियन्त्रित-सा सिर को झकझोरते नीता की ओर झुकते चीत्कार कर उठा—"नी " कि रीता ने अपने हाथ से उसके होठो को दबा दिया, और उसका हाथ पकड़ कर उसे कमरे से बाहर चलने को अपनी गम्भीर दृष्टि से इशारा किया। अरुण की फटी दृष्टि नीता के कुम्हलाये चेहरे पर एक क्षण को टिक गई। नीता की फूली-फूली, लम्बी पलको की बरौनियो के बाल एक-दूसरे से सट गये थे। बन्द आँखों से आँसू की धारे बहते-बहते उसके सूजे हुये सफेद गालो पर सूख गई थी। मैले शीशे-से ललाट पर बिखरे हुये बाल व्यथा की काली लकीरो-से स्थिर पड़े थे। फिर अरुण की सफेद आँखे एक बार धीरे से उसके शरीर पर घूम गई। निद्रा की गहरी छाया मे वेदना की करुण मूर्ति विक्षिप्त पडी थी। अरुण के कलेजे मे बर्छी-सी चुभ गई। उससे हृदय की उमड़ती व्यथा बन्द होठों के कूल तोडने ही वाली थी कि रीता ने उसके आगे हो अपने होठो से धीरे से 'शुह' कर उसकी बाँह खीची।

"सिरहाने 'मीर' के आहिस्ते बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है!"

रीता के पीछे-पीछे लड़खडाते पैरो को उठाता अरुण बैठक मे आ आराम-कुर्सी पर धम से कटे पेड की तरह गिर पडा। उसके सफेद ललाट से पसीने की धारे दोनो ओर गालों पर बहने लगी। स्याह पड़ी पलके बन्द हो गई। वह कुर्सी की पीठ पर लुढक कर अपने बालो को नोचने लगा। उसका हृदय ऐठा जा रहा था। वह छाती को हाथ से मसलने लगा। अन्तर की घनीभूत पीडा फूट पडी। वह दोनों हाथों से मुँह ढॅपता बिलख पडा, जैसे वेदना फफक उठी हो।

रीता उसासे भरती अपलक भीगी आँखो से विमूढ-सी अरुण के सामने

खड़ी उसे देखती रही, जैसे परिस्थित की उलझन में फँस वह विभ्रम-सी हो गई हो।

अरुण के हृदय की तीव्र वेदना सीमा पर पहुँच कर पिघल गई। तड़पती हुई व्यथा को बहने की राह मिल गई। उसकी बन्द आँखों के दोनों कोनों से आँसुओं की गरम धारें बह चलीं। रीता की स्थिर पलकों में जीवन की हलचल हुई। वह झुक गई अरुण पर। उसके काँपते हाथ का अरुण की जलती पलकों पर कोमल स्पर्श हुआ। बरफ-सी शीतलता का अनुभव कर अरुण की आँसू भरी आँखों की पलकें धीरे-धीरे खुल गईं, जैसे शबनम में भीगे हुये कमल की दो पँखुरियाँ धीरे-धीरे खुल कर सरोवर के जल की सतह को छू रही हों!

अरुण की बेबसी में तड़पती नजर रीता की करुण मुख-मुद्रा पर टिक गई। रीता के मुँह से एक लम्बी साँस निकल गई। अरुण के तमतमाये चेहरे पर जैसे एक व्यथा-भरे श्वास की पवन-लहरी सिहर उठी।

"अरुण बाबू!" गले से कुछ नीचे उतार कर रीता काँपते स्वर में बोली। और अरुण के बहते हुये आँसुओं को सँभल कर काँपते हाथ से पोंछ, धक सी हो, एक अपराधी की तरह सहमी हुई तनिक पीछे हट खड़ी हो गई।

"रीता देवी!" अरुण के रुँधे हुये गले से कठिनता से निकले ये शब्द।

"जी!" एक सहमी दृष्टि अरुण की ओर फेंक कर बोली रीता।

"यह सब मैं क्या देख रहा हूं, रीता देवी?" भीगे स्वर में बोला अरुण।

"जी!" अपने हृदय के भय से उद्वेलित हो रीता ने कहा।

"यह सब क्या कर डाला नीता ने?" एक आह भर कर बोला अरुण।

"ओह! तो आप यह जानना चाहते हैं?" अपने में आ, एक कुर्सी खींच, उस पर बैठ कर रीता बोली—"अरुण बाबू, जीजी के दिल की आग ने तो उन्हें जला देने ही ठानी थी, किन्तु जिन्दगी की धार के सामने उसे

हार माननी ही पडी।

"इसे आप जिन्दगी की जीत समझती हैं ?" रुदन-भरी आवाज मे कहा अरुण ने।

"यह सिर्फ समझने की ही बात नहीं है, अरुण बाबू। मर-मर कर जीते हमने लाखों को देखा है, लेकिन जीवन की कुरबानी तो बिरला ही दिल-वाला दे पाता है न! और उसकी कुरबानी के सामने भी क्या जीवन यों ही हार मान लेता होगा ? वह तो कुछ अप्रत्याशित परिस्थितियों के बीच और इतनी शीघ्रता से कुरवानियो का तमाशा हो जाता है कि जीवन को उससे सघर्ष लेने का अवसर ही नही मिलता। यदि जीवन को आत्म-हत्याओ और कुरवानियों से थोडा भी सघर्ष लेने का मौका मिल जाय, तो मै कहूगी कि कम-से-कम निन्नानवे फी सदी जीवन की जीत होगी!"—कह कर गीता ने अपनी चमकती दृष्टि अरुण पर जमा दी।

"लेकिन ऐसा जीवन भी क्या जीवन होता है ?" कहते-कहते अरुण का चेहरा हृदय की व्यथा से विकृत-सा हो गया।

"ऐसा जीवन कोई जीवन नही होता, यही सोच कर ऐसे जीवन का अन्त कर देना मानवीय स्वभाव के विरुद्ध है। निराशाओ के सघन अन्धकार मे जो नन्ही-नन्ही आशाओ की धुँधली किरणे खोई-सी रहती हैं, उनका भी जीवन मे कम महत्व नही होता। मेरी जीजी और आपने जो जीवन की एक ही राह पर दो पग बढ कर, दो प्रेम-तिनकों को चुन कर, ससार की डाली पर जिस प्रेम-नीड की रचना की थी, वह दो ही दिनो के लिये था। उसमे भयकर तूफानो के झोको से लडने की शक्ति नही थी। यह सोच कर कि नीड बन गया, उसे बसाने भर की देर है आप चले गये जीवन के लिये कोई ठोस आधार खोजने परदेस। इसी बीच मे आया तूफान। जीजी की आँखों के सामने ही बिखर गये नीड के तिनके। वह चीखी-चिल्लाई। मगर वहाँ सुनने वाला कौन था ? दूर उड कर चला गया था उनका पछी।"

"लेकिन अब तो आ गया पंछी। समेटेगा वह बिखरे तिनकों को, रचेगा वह नया नीड़। नीता की सफेद आँखों मे भर देगा वह फिर सपनों की रङ्गीनियाँ!" आँखो मे आशा की किरणें चमकाता बोला अरुण।

"काश ऐसा हो सकता!" एक ठंडी साँस ले रीता ने कहा।

"क्यों भला? नीड़ उजड़ गया, तो क्या हुआ? पंछी तो हैं! बसा लेंगे फिर वे अपना नीड़ प्रेम की डार पर "—उत्सुकता-मिश्रित विह्वलता से बोला अरुण।

"टूटी हुई डाल फिर नहीं जुड़ती, अरुण बाबू! बहुत दिनों तक अम्माँ और पिताजी ने परदेशी की राह देखी। कोई सन्देह न आया उसका। आखिर विवश हो उन्होंने बाँध दिया जीजी के फड़फडाते डैनों को एक दूसरे पंछी के साथ। आज के पन्द्रहवें दिन आ जायगा वह पंछी। चली जायँगी जीजी। बस जायगा उनका नया नीड़।"—कहते-कहते रीता की आँखो मे आँसू भर आये, झुक गया उसका सिर।

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! मेरी नीता को मुझ से कोई नहीं छीन सकता!" भावावेश मे अरुण के स्वर काँप रहे थे।

"अरुण बाबू!" गम्भीर हो बोली रीता—"तूफान जीजी के जीवन-वृक्ष को निर्दयता के साथ झकझोर कर चला गया है अम्माँ और मेरे स्नेहाश्रुओं ने उनकी जड़ मे पुनः जीवन-रस डाल, बडी कोशिशों से उसे खडा किया है जीजी की रौंदी हुई आशाएँ पुनः जड़ पकड़ने लगी हैं। रोती बिलखती वह अपने जीवन की नई राह पर पग-पग बढ रही हैं। आपका पुनः उनके जीवन मे प्रवेश करना हमारे सब करे-धरे पर पानी फेर देगा। अब आप जीजी की जीवन-धारा पलटने का प्रयत्न न करें। आपकी यह कोशिश जीजी के लिये वरदान न हो, उन्हे अभिशापों के बवडर मे उडा ले जायगी। उससे न आपको कोई लाभ होगा, न जीजी को। इसलिये अच्छा यही है कि जीजी को उनके भाग्य पर छोड़, आप अपने को सँभालने का

प्रयत्न करे। जीजी जब तक चली न जायँ, आपके यहाँ आ जाने की बात भी उन्हें मालूम नहीं होनी चाहिये, क्योंकि ऐसा होने से सम्भव है उनकी साधना टूट जाय। इसलिये मै तो कहूंगी कि अम्माँ और पिताजी के बाजार से वापस आने के पहले ही आप यहाँ से चले जायँ।" कहते-कहते असीम व्यथा के कारण रीता की आँखे मुँद गईं।

अरुण का सारा शरीर काँप गया, चेहरा अत्यधिक विकृत हो गया, जबान सूख गई।

अरुण से कुछ न सुन रीता अपने को सँभाल कर, आँखे खोल बोली—"अरुण बाबू, अब आप चले जाइये! वरना कही जीजी जग गईं, या अम्माँ और पिताजी आ गये, तो बडा अनर्थ हो जायगा। मै आपके यहाँ आऊँगी। मुझसे जो भी हो सकेगा मै आपकी ओर से प्रयत्न करूँगी। अरुण बाबू, आप जानते तो हैं कि जीजी से मुझे कितना स्नेह है। मै उनकी खातिर, उनके प्यार के खातिर कुछ भी उठा न रखूँगी। ऐसे नाजुक मामले में हाथ लगाने के पहले मुझे सोचने का मौका दीजिये।" कह कर उबलती हुई आँखों को आँचल से दबाती रीता कमरे से बाहर हो गई।

फैली आँखो मे भीषण अन्धकार लिये निर्जीव-सा अरुण उठ खड़ा हुआ, और दिल को हाथ से दबाये लड़खड़ाता हुआ बाहर हो गया।

सहसा नीता की आखे खुल गई। वह चिल्ला पडी—"रीता! रीता!"

भागती रीता नीता के पास आकर खडी हो बोल पडी—"क्या है, जीजा? उठ गईं तुम!"

"हाँ!" नीता के सूखे चेहरे पर एक हल्की मुस्कान थिरक उठी, जैसे टहनी पर लटकी एक अधखिली मुरझाई कली पर उषा की आभा नाच उठी हो। उसने रीता पर अपनी बोझिल आँखे उठाई। रीता जल्दी मे नीता की पुकार सुन अपने आँसू पोछे बिना ही उसके पास दौड आई थी। उसकी भीगी आँखो को देख नीता बोली—"क्यो रीता, तुम रो रही थीं क्या?"

"नही तो !" आँखों को पोंछती रीता बोली।

"पगली !" रीता की ओर हाथ उठाती, उठने की चेष्टा करती, नीता बोली—"अरे, तेरी जीजी हमेशा ऐसी ही थोड़े रहेगी।"

"तुम लेटी रहो, जीजी !" नीता के उठे हुये हाथों को थामती रीता बोली। और उसको फिर लेटा कर, तकिये को उसके सिर के नीचे ठीक कर, सिरहाने बैठ अपने हाथो से उसके बिखरे बालो को समेटने लगी।

"रीता, आज मेरी तबीयत बहुत हल्की मालूम होती है। दिल से भी जैसे कोई भार हट गया है। जानती है क्यो ?"—कह कर सिर को तकिये के के नीचे खिसका कर आँखो को ऊपर उठा रीता को देखने लगी।

"अच्छी नीद आई होगी," नीता के समेटे हुये बालों को एक मे ऐंठती बोली रीता।

"हाँ," फिर सिर को तकिये पर ठीक करती नीता बोली—"बडी मीठी नींद आई थी, रीता ! और एक मधुर सपना भी लाई थी वह अपने साथ मे।"

"ऍ ! सपना ! क्या देखा तुमने ऐसा मधुर, जीजी" उमेठे हुये बालो को उत्सुकता के आवेश मे छोड़ कर रीता बोल पड़ी।

"आखिर मेरी बहन के प्यार ने ही मेरे भटके जीवन को राह दिखाई न !" अपने मे खोती-सी धीरे से नीता ने कहा।

"क्या कहा ? मै कुछ नही समझी, जीजी !" और भी उत्सुक हो उठी रीता।

"मुझमे आज काफी उत्साह मालूम हो रहा है, रीता। जरा मुझे सहारा दे न ! फिर मै खीचूँ अपने सपने की रङ्गीन तस्वीर तेरी आँखो मे !"—कह कर अपना सिर तकिये से उठाने लगी नीता।

रीता ने उसे सहारा दे उठा कर, जल्दी मे उसके खुले बालो को उमेठकर जूड़ा बना दिया। फिर उसके सिर को अपनी छाती से टिका कर कुम्हलाये

चेहरे पर बड़े प्यार से हाथ फेरने लगी, जैसे प्रेम की देवी किसी व्यथा-ग्रस्त प्राणी को अपनी गोद मे बिठा अपनी कोमल उँगलियो के सम्मोहक स्पर्श से उसकी पीडा को सुला रही हो !

"रीता, मै कितनी भाग्यवान् हूं, जो तुम-सी स्नेहमयी बहिन मिली है मुझे !"

"जीजी, काश मेरा प्यार तुम्हारे टूटे दिल के तारो पर जिन्दगी की रागिनी बन छा जाती !"

"तुम्हे नही मालूम, रीता, कि तुम्हारे हृदय के स्नेह ने मेरे जीवन-मरु मे जिस अमृत की धार बहा दी है, वह जीवन भर कभी न सूखेगी। मै अब जीऊँगी, रीता ! अपने लिये नहीं, अरुण के लिये भी नही, सिर्फ तुम्हारे लिये, तुम्हारे प्यार के लिये मै जीवित रहूंगी, रीता !"—कहते-कहते नीता की आँखे रीता के प्रति हृदय की स्नेह-विह्वलता के कारण मुँद गई ।

"मेरी अच्छी जीजी !" रीता की आँखो मे खुशी के आँसू चमक उठे। उसने अपना सिर झुका कर भावावेश मे नीता के होठ चूम लिये।

नीता के सफेद गालों पर मन्द हास्य की रेखाये चमक गई, जैसे बर्फ की-सतह पर उषा की कोमल किरणे चमक रही हो। उसने रीता का हाथ अपने हाथ मे ले दबाते कहा—"हाँ, तो रीता, सुनेगी न तू मेरे सपने की बात ?"

"हाँ, जीजी, कहो न ! मै तो तुम्हारी प्यारी बातो मे खो गई थी।" फिर उत्सुक हो उठी रीता।

"अच्छा, तो सुनो ! मैने देखा कि मेरे दरवाजे पर शहनाई बज रही है। विवाह-मडप लोगों से खचाखच भरा हुआ है। मैं मधु बाबू के साथ दुल्हन बन कर बैठी हू। यज्ञ-कुण्ड से घना धुआँ उठ रहा है। मेरी आँखो से झर-झर आँसू गिर रहे हैं। उन्ही धुँधली आँखों को फैलाये मै उस धुँये मे अपने जीवन के खोते प्रकाश को देख रही हू कि सहसा अरुण की छाया उन धुँये

की लहरो मे डोल उठती है। मेरी आँखे एक अपराधी की तरह झुक जाती हैं। फिर जो नजर उठाती हूं, तो क्या देखती हू कि अरुण की छाया की स्थिर आँखो से आँसुओ की धाराये बह रही है। मै उसे वैसे देख कर फूट पड़ती हूं। अरुण की छाया रुद्ध आवाज मे वोलती है—'नीता, तू मुझे किस पर छोड़े जाती है ?' मेरी बरसती आँखे आकाश की ओर उठ जाती हैं। सहसा आकाश मे गड़गडाहट होती है। और क्या देखती हूं कि आकाश से एक परी उड़ती हुई नीचे उतर रही है। मेरी आँखो म आश्चर्य भर जाता है कि क्षण भर मे वह परी मेरे और अरुण की छाया के बीच उतर कर खड़ी हो जाती है। उसका एक हाथ मेरी ओर दूसरा हाथ अरुण की छाया की ओर आहिस्ते-आहिस्ते उठता है। फिर एक ही साथ उसके हाथ हम दोनों के आँसू पोंछ देते हैं। इतने मे कोई मेरी बाँह पकड़ उठा देता है। मेरे सामने जैसे हजारो दीपक जल उठते हैं। मेरी आँखे चौंधिया जाती हैं। एक क्षण के बाद सुनती हू कि मुझसे भाँवर डालने के लिए कहा जा रहा है। मधु वाबू के पीछे-पीछे मेरे पाँव उठते हैं कि" . सहसा नीता रुक गई।

"कि ..क्या हुआ, जीजी ?" तन्मयता से उचक कर रीता बोल पड़ी।

"कि मेरी नीद खुल गई," रीता की गर्दन मे हाथ डाल उसका सिर अपनी ओर खींच कर उसकी आँखो मे आँखे डाल नीता बोली—"जानती है, रीता, वह परी कैसी थी ?"

"ऊँहू ! बताओ न, जीजी ! भला कैसी थी वह सपने की परी ?" उत्सुकता मचल पड़ी रीता की आँखो मे।

"रीता, वह ..वह ," रीता का सिर और भी अपने मुँह के पास झुका कर कहा नीता ने—"वह बिलकुल तुम्हारी-जैसी थी, रीता !"

"जीजी !" अपना सिर झटके से ऊपर करते चिल्ला पडी रीता। और अपना अपराधी हाथ सहमी हुई आँखो से देखने लगी, जिससे अभी थोडी पहले उसने अरुण के आँसू पोंछे थे।

"पगली !" धीरे से रीता के गले से अपनी बाँहे निकालते नीता बोली- "यो भी कही घबराया जाता है ? मुझे तो अपने से अधिक अरुण की चिन थी कि कौन उसे मेरे बराबर प्यार और सहानुभूति दे उसकी उजडी दुनि बसा सकेगा ।"

"जीजी, तुम्हारे हृदय के देवता का तुम्हारी बहन होने के नाते भले मै दूर से खडी हो दर्शन कर लूँ, पर उनके चरण स्पर्श का अधिकार लेने व साहस मै कैसे कर सकती हू ?"

"और यदि तुम्हारी जीजी अपने हृदय के देवता की मूर्त्ति तुम्हारे हृद मन्दिर मे अपने ही हाथो से स्थापित कर दे, तो ?"

"नही-नही, जीजी ! ऐसा न कहो, ऐसा न कहो ! मै पागल जाऊँगी !"—सिर झकझोरते रीता चीख उठी ।

"तुम्हे मैं पागल न होने दूँगी, रीता ! मै जानती हू तुम्हे और तुम्ह उस अगाध स्नेह और अटूट श्रद्धा को, जो तुम्हारे हृदय मे अपनी जीजी लिये हैं । मै यह भी जानती हू, रीता, कि उसी स्नेह और श्रद्धा के कारण तु हमेशा मेरे सामने झुकी रही, कभी कुछ कहने के लिये सिर न उठाया । मग तुम्हारी जीजी का भी तो तुम्हारे प्रति कुछ कर्तव्य है । तुमने मुँह से कुछ न कहा, तो क्या ? तुम्हारी कितनी ही बाते आज मेरे मानस मे लहरा कर क रही हैं कि तुमने भी मेरी ही तरह अपने हृदय के कोनो को अरुण के प्या से ज्योतिर्मय कर रखा है !"

"जीजी !" बीच ही मे जोर से चिल्ला पडी रीता ।

"रीता, यों न चिल्लाओ, बहन ! मेरा हृदय बहुत कमजोर हो गया है कोई भी कडी आवाज उससे टकरा कर उसे झनझना देती है । रीता, तुम अपनी जान मे कोई अपराध नही किया है । फिर इस कदर क्यों घबरा र हो ? अपनी जीजी के कारण जो तुमने अपनी प्रेम-धारा के सामने मू साधना का बडा-सा पत्थर रख उसके स्रोत को रोक दिया, उसे आज तुम्हा

जीजी अपने ही हाथो से हमेशा के लिये उठा देना चाहती है। बहे तुम्हारे प्रेम की धारा, डूब जाय हृदय का कूल किनारा! जिस अरुण को अपना सर्वस्व अर्पण करके भी मै अपना न बना सकी, उससे अब तुम वंचित क्यो रहो? कभी मै सोचती थी कि प्यार पाने मे कितना सुख है, आज, बहन, सोचती हूं प्यार देने मे कितना सुख है! वह भी तुम्हारी-जैसी प्रेममयी बहन को!"—कहते-कहते अपने मे तन्मय हो गई नीता।

"जीजी, तुम गलत समझ रही हो। मैने कभी यह न चाहा। मैने अरुण बाबू को कभी इस दृष्टि से न देखा।"

"मै तो कुछ नही कह रही, बहन। याद है, रीता, तुम्हे उस दिन की बात?" आँखो के सामने शून्य मे जैसे अतीत-का कोई दृश्य देखती नीता बोली—"अरुण और मै आमने-सामने बैठक मे कोच पर बैठे हुये बाते कर रहे थे। तुम सिमटी-सिकुड़ी-सी हाथ मे चाय की ट्रे लिये आई। ट्रे हमारे सामने मेज पर रख कर तुम प्यालों मे चायदानी से चाय ढालने लगी। मै अरुण की बातो मे खोई हुई-सी थी कि सहसा वह तुम्हारी ओर देख कर चिल्ला उठे—'रीता देवी, यह क्या कर रही हैं आप?' मेरी आँखे तुम्हारी ओर फिर गईं। मैने देखा, चाय की धार प्याले मे गिरने के बजाय मेज पर गिर रही है और वहाँ से तुम्हारी साड़ी को रँगती हुई फर्श पर। तुम अरुण की बात सुन कर सकपका गईं। तुम्हारा चेहरा सुर्ख हो गया। तुम्हारे हाथ मे चायदानी काँप रही थी। तुम वहाँ और न ठहर भाग गई बैठक से बाहर। मै.. मै . " सहसा नीता चुप हो गई। अतीत के उस दृश्य की याद उसकी सूखी आँखो को तरल कर गई।

रीता नीता के कन्धे पर सिर डाल सिसकती बोली—"जीजी, भले ही तुम अपने हृदय को परिस्थिति की विवशता के कारण समझा बुझा कर धोखा दे लो, किन्तु क्या यह सम्भव है कि अरुण बाबू के हृदय मे बसी तुम्हारी मोहिनी मूरत केवल तुम्हारे चाहने भर से निकल जायगी?"

"रीता," रीता के बालो में अपनी पतली-पतली, कमजोर उँगलियाँ फेरती ने नीता कहा—"सच्चे प्रेम और हृदय की सेवा की अवहेलना संसार मे कोई नही कर सकता ! और अरुण, जो मेरे हृदय का देवता रह चुका है, जब अपना आँचल फैला कर एक भिखारिन की तरह उसके कदमो मे झुक कर मै तुम्हारे लिये याचना करूँगी, क्या मेरी माँग ठुकरा सकेगा, मुझे खाली आँचल वापस कर देगा ?" कह कर नीता के गले मे अपनी बाहे डाल उसका मुँह अपने मुँह के पास खींच लिया। रीता उसके ललाट से अपना ललाट रगडती फूट पडी।

२

अरुण को पुकारते-पुकारते जब थक गईं, तो हाथ मे भाजन की थाली लिये उसकी माँ सीढियो को तै कर ऊपर पहुँची। अरुण के कमरे के दरवाजे भिडे थे। दराज से बिजली की रोशनी झाँक रही थी। उन्होने दरवाजे को उँगली से खटखटा कर कहा—"अरे बेटा, कितनी देर से पुकार रही हूं ! कुछ खाये-पियेगा कि यों ही सो रहेगा ?"

कुछ इन्तजार के बाद भी जब अन्दर से कोई आवाज न आई, तो वह घबरा उठी। उनका कलेजा धक्-धक् करने लगा। काँपते हाथ से दरवाजा खोला जो देखा, तो अरुण का सिर कुर्सी के पीछे लटक रहा था। उनकी आँखो के सामने घना अन्धकार छा गया, और उस अन्धकार मे अनगिन्त तारे चमकने लगे। उनके हाथ से थाली फर्श पर गिर पड़ी। उसकी झनझनाहट कमरे मे गूँज उठी, किन्तु अरुण के सन्न कानो को लगा जैसे एक सोने की अँगूठी गिरने का शब्द हुआ हो। माँ दौड़ कर उससे लिपट गई,

तो बदमस्त अरुण को लगा, जैसे उसके गले मे कोई डोरा लिपट गया हो। वह माँ का हाथ गले से डूबा-ही-डूबा निकालने लगा। माँ उसे और भी अपनी बाँहों मे कसती चिल्ला पड़ी—"अरुण! अरुण! बेटा अरुण!" पर अरुण के सुन्न मस्तिष्क को एक अस्पष्ट-सी पतली आवाज छू कर रह गई।

माँ और भी घबरा गईं। वह उठ कर, उसके कन्धो को पकड़ जोर से झकझोर कर बोली—अरुण! अरुण! क्या हो गया, बेटा, तुझे? बोलता क्यों नही?" अरुण को लगा जैसे दो मक्खियाँ उसके कन्धों पर बैठ गई हो। वह अपना हाथ कन्धों के ऊपर उठा कर, उँगलियों को फैला कर हिलाने लगा।

अरुण की वह दीवानगी की हरकत देख माँ का माथा ठनका। वह कमरे मे इधर-उधर आँखे फाड़ कर देखने लगीं। अरुण के सामने मेज पर लुढकी हुई शराब की बोतल, गिलास और अधजली सिगरेटों के टुकड़ो पर निगाह पड़ते ही उनकी समझ मे सब-कुछ आ गया। वह भागती सीढियों पर गिरते-गिरते बचती नौकर के कमरे मे आ बोली—"सुखुवा, जा जल्दी, रीता के पिता जी को तो बुला ला!"

"रीता बीबी के पिता जी को? इतनी रात गये?"—खटोले से उठता सुखुवा आश्चर्य से बोल पड़ा।

"हाँ-हाँ, जा जल्दी! कहना कि अरुण की तबीयत बहुत खराब है।"—कह कर माँ आँगन मे दौड़ कर टब से गगरे मे पानी ढारने लगी। सुखुवा घबराया हुआ उनके पीछे-पीछे आ फिर बोला—"माँजी क्या हो गया अरुण भैया को?"

"अरे, अभी तू यहीं है? जाता है कि नही तू?"—एक हाथ से गगरा और दूसरे से लोटा उठाती चीख पड़ी माँ।

सुखुवा भागा बाहर की ओर।

माँ लपकती दो-दो सीढियो को लाँघती, हाँफती हुई ऊपर अरुण के पास

जा, उसकी आँखो पर पानी के छींटे देने लगीं।

अरुण की मस्ती मे सराबोर आँखों को लगता था, जैसे कोई शबनम में भीगी गुलाब की पँखुरियो से उसकी पलकों को बार-बार छू रहा हो।

माँ कुछ देर तक उसके मुँह और आँखों पर छींटे दे, उसके सिर पर पानी की धार गिराने लगी। अरुण की बन्द आँखो के सामने घने अन्धकार के परदे काँपने लगे। माँ उसके सिर पर पानी की धार गिराती रही। अरुण की आँखो के सामने से अन्धकार के परदे एक-एक कर सरकने लगे। उसकी पलको मे हरकत हुई। माँ ने फिर एक जोर का छींटा उसकी काँपती पलकों पर दिया। अरुण की चढी हुई पलके जोर से काँप कर खुलने लगीं। माँ की जान मे जान आई। अरुण की आँखो के सामने बिजली का लट्टू चक्कर काटने लगा। माँ ने आँचल से उसका ललाट पोंछ दिया। बिजली के लट्टू के चक्कर की रफ्तार धीरे-धीरे कम होने लगी। माँ ने उसकी आँखों की बरौनियो पर बिखरी पानी की बूँदों को आँचल के कोने से फूल की तरह उठा लिया। बिजली का लट्टू स्थिर हो गया। अरुण के गले मे सुरसुरी हुई। फिर गले के परदों से खरखराती टूटी आवाज आई—"कौन?"

" मै हूं, बेटा, तेरी माँ। उठ, चल तुझे पलंग पर लिटा दूँ।"—अरुण की बगलों मे हाथ डाले उसे उठाती हुई माँ बोली। अरुण माँ के हाथों में उठ पलग की ओर बढा। कदम रखते-रखते लडखडाया और पलग पर धम से गिर गया। उसके मस्तिष्क मे फिर झनझनाहट हुई, और आँखे बन्द हो गईं। माँ ने उसे धीरे से लिटा दिया, और अपना आँचल पानी मे भिगो कर उसके माथे और आँखो को तर करने लगी।

"चाचीजी, क्या हो गया अरुण बाबू को?" दरवाजे से लपकती माँजी के सामने खडी हो हाँफती हुई रीता बोली—"पिताजी सो गये थे। मै ही चली आई अम्माँ से कह कर।"

माँजी ने अपने होठों पर उँगली रख धीरे से बोलने का इशारा किया,

फिर सामने मेज की ओर हाथ उठा दिया।

रीता की दृष्टि मेज की ओर मुड़ गई। मेज पर शराब की बोतल और गिलास देख कर वह सब-कुछ समझ गई। उसकी आँखों मे विषाद भर गया। मुँह से सहसा निकल गया—"ओह !" फिर उसने अरुण पर झुक कर माँ से पूछा—"चाचीजी, कब से यह यो बेहोश पडे है ?"

"अब इसकी तबीयत कुछ थिरा रही है, बेटी। जरा वह पखा तो उठाना !"

रीता अपनी आँखे अरुण की चढी हुई बन्द पलको पर टिकाये पंखा झलने लगी। अरुण की आँखे फिर धीरे-धीरे खुलने लगी बिजली की रोशनी मे उसकी आँखो की लाली अगारे की तरह चमक उठी। रीता की दृष्टि उस चमक पर न ठहर सकी। उसने आँखे फेर ली।

"कौन ? ओह, नीता !" नशे की झोक मे अरुण बड़बड़ाने लगा—"तुम...तुम क्यो आई ? किसने बुलाया तुम्हे ? ओह ! तुम रो रही हो ! समझा . समझा ! तुम मुझे अलविदा कहने आई हो न ? तो आओ ..आओ ! बैठो मेरे पास !" अरुण का बेकाबू हाथ रीता की ओर बढा। रीता ने अपना हाथ माँ की ओर सहमी हुई दृष्टि से देखते हुये हटा लिया। माँ का हृदय कचोट उठा। उन्होने अपना मुँह फेर लिया, और धीरे से उठ कर कमरे से बाहर हो गई। रीता की दृष्टि उनके पीछे-पीछे कमरे के दरवाजे तक जा कर लौट आई।

"क्यो, क्यों, नीता, तुमने अपना हाथ क्यो खीच लिया ?" अपनी बड़ मे ही बोला अरुण—"समझा, अब ये हाथ दूसरे के हो गये हैं न ! इन्हे छूने का अधिकार अब मुझे न रहा ! फिर भी, नीता, क्या तुम भूल गई कि यही मेरे और तुम्हारे हाथ हैं, जिन्हे एक-दूसरे मे उलझाये हम घण्टों सपनो के देश मे उड़ा करते थे दीन-दुनिया से बेखबर। तो क्या आज, इस अन्तिम मिलन की घड़ी मे, नीता, तुम यो ही मुझसे अलग-अलग खड़ी रहोगी ? नही-

नहीं, नीता, एक बार, सिर्फ एक बार के लिये फिर उलझने दो मेरी उँगलियो को अपनी पतली-पतली कोमल-कोमल उँगलियो मे । और आओ, हम हमेशा, हमेशा के लिये एक-दूसरे से अलग होने के पहले एक बार फिर हाथ मे हाथ मिलाये घूम आये चाँद और तारो का देश ! फिर, फिर मै आँखे मूँद लूँगा । तुम चली जाना, नीता । मै कुछ न कहूंगा, कुछ न कहूगा, नीता !" कह कर, उसने अपनी काँपती उँगलियो को फैला कर रीता की ओर बढाया । रीता ने उसकी उँगलियो को समेट कर अपने हाथ मे दबा लिया । और उससे सट कर बुत बन कर बैठ गई ।

"तुम कितनी अच्छी हो, नीता ! अपने दीवाने की दीवानगी के इशारो पर भी तुम इस तरह अपनी परिस्थितियो को भुला अपने को छोड देती हो !"—कह कर अरुण ने रीता का हाथ अपने हाथ मे ले अपने होठों की ओर बढाया । फिर एक झटके से उसे नीचे कर बोल पड़ा—"नही-नही, नीता ! मै ऐसा नही करूँगा । मै इतना दीवाना नही हू । मै इन पवित्र हाथो पर अपने होठो का धब्बा न लगने दूँगा ! इतना ही क्या मेरे लिये कम है, नीता ?"

रीता काँप उठी । उसकी आँखों से झरने लगे वेदना के अश्रु ।

"नीता, नीता ! तुम्हारे होठ फड़फडा रहे हैं," अपनी ही रव मे कहता गया अरुण—"तुम तुम मुझसे कुछ कहना चाहती हो । कहो, कहो, नीता ! ये तुम्हारी आखिरी बाते होंगी । मै इन्हे अपने टूटे हृदय के कोने मे जीवन की अन्तिम अमर निधि समझ कर जब तक जीऊँगा, सँजोये रहूगा । बोलो, बोलो, नीता !" तनिक रुक कर फिर अपनी धुन मे बोला—"मै, मै शराब पीता हू ! किसने कहा तुमसे ?" रुक कर फिर बोला—"हाँ, समझा, रीता देवी ने कहा होगा तुमसे । लेकिन उन्हे तो मैने मना किया था कि वह न कहे तुम से तुम्हारे दीवाने की कोई बात । अच्छा, अच्छा, छोड़ो, नीता, इन बातो को । करो कुछ प्यार की मीठी-मीठी बाते !

गनीमत जानिये मिल बैठने को,
जुदाई की घड़ी सिर पर खड़ी है !"

रीता की हिचकियाँ बँध गईं।

"उधर दरवाजे की ओर क्या इशारा कर रही हो, नीता ?" वैसे ही डूबा-डूबा बोला अरुण—"अच्छा, रीता देवी कब से खड़ी हैं वहाँ ! बुलाओ, बुलाओ उन्हे, नीता ! ऐं ! क्या कहा तुमने ? नीता, क्या तुम्हारे अरुण ने कभी तुम्हारी कोई बात टाली है ? तुम कहो, नीता ! भले ही अब तुम दूसरे की हो गई, किन्तु क्या चाँद और तारो की छाँव मे अरुण ने जो तुमसे अपनी आत्मा का सम्बन्ध स्थापित किया है, उसे भी कोई मानवीय हाथ तोड़ सकता है ? ओह ! यह तुमने क्या कर डाला नीता ? इससे तो अच्छा होता कि तुम मेरे पहलू से मेरा दिल नोच कर आग मे झोंक-देतीं ! नहीं-नहीं, नीता, वापस ले लो अपनी बात ! रीता देवी मेरी नीता का स्थान नहीं ले सकती। दुनिया मे कोई भी तुम्हारे रिक्त हुये स्थान की पूर्त्ति नही कर सकता, नीता ! मै जीवन भर अपने आँसुओं से धो-धो कर तुम्हारी पावन स्मृतियाँ उज्ज्वल करता रहूँगा। उन स्मृतियो के सहारे ही मै अपना शेष जीवन काट लूँगा, नीता ! मुझे और कुछ नही चाहिये, कुछ नही, नीता !"

रीता अपने को और अधिक न सँभाल सकी। वह लुढक कर अरुण की छाती पर अपना सिर रगड़ती फूट-कर रो पड़ी।

"ओह ! तुम रो रही हो !" रीता के बालो पर हाथ फेरता अरुण वैसे ही बोला—"नीता, मेरी आँखों मे तुम्हारे इन आँसुओ को देखने की शक्ति नही है। मेरी इतनी बड़ी परीक्षा न लो, नीता ! फूलों की सेज से उठा कर मुझे काँटों के अम्बार मे न पटको ! क्या कहा ? यह तुम्हारी अन्तिम प्रार्थना है ! इसे मुझे मानना ही पड़ेगा नही तो तुम अपनी जान दे दोगी ! नहीं-नहीं, नीता, ऐसा न कहो, ऐसा न कहो ! तुम्हारा अरुण कलेजे पर पत्थर रख कर तुम्हारी इस अन्तिम आज्ञा का पालन करने का प्रयत्न करेगा ! हृदय के टुकड़ों को एकत्रित

कर उन्हे जीवन-रस से जोडने की कोशिश करेगा ! तुम्हारी बात पूरी हो !"
कह अरुण अचेतनता मे ही विह्वल हो रो पड़ा। रीता वैसे ही सिसकती रही।

"क्यो बेटी, रीता, कैसा है अब अरुण ? मैने डाक्टर को बुलवाया था। वह आ गये हैं।"—डाक्टर को लिये माँ कमरे मे घुसती हुई बोलीं।

रीता सकपका कर अपना सिर उठा, आँखो के आँसुओ को पोछ, कपड़े ठीक करती चारपाई से उतर खडी हो गई। अरुण वैसे ही बिलखता रहा।

"कब से इनकी यह हालत है ?" अरुण को झुक कर देखता हुआ डाक्टर बोला।

"करीब एक घन्टे से यह यो ही पडा है। मालूम होता है, आज इसने बहुत शराब पी ली है।"—माँ ने चिन्तित स्वर मे कहा।

"ओह, यह बात है ! इन्हे पीने-खाने का अन्दाज तो होना चाहिये ! बडी अजीब बात है।"—बैग से दवा निकालते डाक्टर बोला।

"ऐसा तो अब तक नहीं हुआ था, डाक्टर। लेकिन अब देखती हू कि यह बहुत पीने लगा है।"—माँ ने कहा।

"अच्छा, लीजिये यह दवा। एक खुराक काफी है। इन्हे अभी गरम पानी मे मिला कर पिला दीजिये। एक-दो कै होगी, फिर सब ठीक हो जायगा," दवा देते डाक्टर ने कहा—"अच्छा, नमस्ते !" कह कर डाक्टर चला गया।

"थाम, बेटी, यह दवा। मै अभी गरम पानी लाती हू। अरे हाँ, अपनी अम्माँ से तो तू कह कर आई है न ? कहीं वह ढूँढ न रही हो।"

रीता ने धीरे से सिर हिला दिया।

"अच्छा, मुखुवा को भेज मै फिर से कहलाये देती हूं।" कह कर माँ नीचे चली गईं।

रीता अरुण पर झुक कर आँचल से उसकी आँखो को पोछने लगी।

'सुलग रहा हूं मुहब्बत की आग मे "बहजाद,"
किसी ने शोला-सा दिल मे लगा के छोड़ दिया।'

चली गई नीता शोला लगा कर। जलने लगा अरुण वेदना की ज्वाला मे। और रीता? क्या करे वह? रोये या हँसे? दुनिया की नजरो से छिपाये अपने आँचल की आड़ मे वह जो प्रेम-दीप वर्षों से जलाये बैठी थी, वह जल रहा था अपनी ही रव मे मन्द-मन्द। जाते-जाते सहसा उसकी जीजी जो उस दीप की बत्ती उकसा गईं, जो उसमें इतना-सा स्नेह डाल गईं, तो लप-लपा उठी उस दीप की लौ अपना पूर्ण प्रकाश बिखेरती। टूट गया साधना का बन्धन, हट गई आँचल की छाया। अब कोई भी देख ले रीता के प्रेम-दीप का मुक्त प्रकाश। किन्तु क्या आलोकित हो उठा रीता का अन्धकारपूर्ण हृदय उस प्रकाश से? क्या भर गई उस दीप की ज्योति उसकी निराशा-भरी सूनी आँखों में?

हेमन्त की सन्ध्या की फीकी आभा पर दिन भर की उड़ी हुई गर्द एक पर्दा बन कर फैल गई थी। हवा दिन भर चलते-चलते थक कर शिथिल हो गई थी। वेठौर-ठिकाने के थके हुए मुसाफिरो की तरह कुछ पछी अपने बोझिल डैनो को धीरे-धीरे हिलाते रुखे-सूखे आसमान मे धब्बो की तरह तैर रहे थे। वृक्षो की नगी डालियाँ सूनी सन्ध्या की पृष्ठभूमि पर काली-काली रेखाओ-सी उभर बडा ही भयावना और करुण दृश्य उपस्थित कर रही थी। वातावरण मे एक वृद्ध, दीन भिखारी की उदास, सिकुडी हुई आँखो की-सी स्थिर शून्यता व्याप्त थी।

रीता अपने ऊपर के कमरे की पीछे की खुली हुई खिडकी के पास कुर्सी पर उदास बैठी हुई दूर क्षितिज पर अपनी अपलक आँखे टिकाये जैसे अपनी स्थिति का नक्शा देखने मे तल्लीन थी। उस नक्शे मे उसकी जीजी

ी बाते एक-एक कर अपनी रेखाये खीच रही थी, और उन रेखाओ को ाटती हुई अरुण की बातों की रेखाये जाल-सी बुन रही थीं। उसी जाल मे फँसी हुई फड़फडा रही थी रीता। क्या करे वह ? कैसे वह अरुण की बातों की रेखाओं को उठा कर जीजी की बातों की रेखाओं की सीध मे रख दे ? माना कि अरुण ने जीजी को वचन दिया है। माना कि वह जाते-जाते अम्माँ और चाचीजी की जबान ले चुकी है। मगर क्या हुआ इससे ? क्या करेगी रीता अरुण के वचन-बद्ध सम्बन्ध की सीमा मे अपने को बाँध कर ? किस आँचल मे वह सँजो सकेगी अम्माँ और चाचीजी के वचन-बद्ध आशीर्वाद-पुष्प ? नहीं-नही, रीता को वह सब नही चाहिये। रीता का प्यार इतना ओछा नही है। पपीहे की रटन स्वाति की वर्षा के लिये होती है, न कि तालाब के बँधे जल के लिये। रीता के प्यार की पुकार पपीहे की रटन से किसी भाँति भी कम नहीं। किन्तु क्या उसकी पुकार की चोटे अरुण के हृदय-प्रस्तर पर खुदी हुई जीजी की प्रतिमा मिटा कर उस पर रीता के प्यार की मूर्ति अकित करने मे सफल हो सकती हैं ? जीजी की प्रतिमा और रीता की मूर्ति ! होड लगेगी दो बहनों मे ? नही-नही, रीता ने अपनी स्नेहमयी जीजी से कभी होड न की। फिर ? अरे, हाँ अब होड़ का प्रश्न ही कहाँ रहा ? चली गई महलो की रानी, छोड गई है अपनी छाया सूने महलो मे। पडी हुई है वीणा, गूँज रही है उस पर गाये उसके प्रेम-गीतो की झकार। राज दे गई है वह रीता को सूने महलो का। अधिकार दे गई है वह उस वीणा पर उसे। बन सकेगी वह रानी उन महलो की ! गा सकेगी वह प्रेम-गीत उस वीणा पर ? सहसा रीता की आँखो के सामने के नक्शे पर खिची रेखाये घुल-मिल कर एक हो, एक बडा-सा प्रश्नवाचक चिह्न बन खडी हो गई। रीता एक ठड़ी साँस ले इधर-उधर देखने लगी। सन्ध्या की आभा पर छाये गर्द के परदे पर, आकाश मे उडते थके हुये पछियो पर, वृक्षो की नगी डालियो पर जहाँ कही भी उसकी दृष्टि गई वह प्रश्नवाचक चिह्न वहाँ-वहाँ

उसका पीछा करता रहा ! अन्त में खिड़की के बराबर बाँह की तरह फैली हुई आम की एक नंगी डाली पर उसकी दृष्टि आ टिकी। वहाँ भी डाल के ऊपर वह प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा हो गया। वह और अधिक न देख सकी उसे। वह काँप गई। उसने दोनो हाथो से अपनी आँखो को दबा लिया। किन्तु वह प्रश्नवाचक चिह्न हाथो और बन्द पलको को छेद कर भी जैसे उसकी आँखो मे घुस गया ! वह सिर झकझोरती चिल्ला पड़ी—"उफ !" हृदय पर छाया निराशा का घना बादल उमड़-घुमड़ कर बरसने लगा ! ..

सहसा उसके कानो मे कुछ फड़फड़ाने की आवाज आई। उसने भीगी आँखे खोल कर सामने देखा, डाली पर एक कोयल बैठी खिड़की की ओर देख रही थी। वह आखे मलकाती एक क्षण तक उसकी ओर देखती रही कि उसे लगा, जैसे कोयल कूक उठी हो, और आम की नगी डाल मे नई-नई कोपले फूट निकली हो झूम उठी हो वह डाल बौरो से लद कर, गमक उठा हो वातावरण उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध से ! उसकी आखे मुस्करा उठी। चेहरा खिल गया। उसके कानो मे मधुर-मधुर भौरो की गुञ्जार भर गई।

"रीता ! ओ रीता !" नीचे से उसकी मा की पुकार आई, और भौरो की गुञ्जार मे खो गई। मा ने फिर जोर से पुकारा—"रीता ! ओ रीता ! सुनती नही ?" रीता का सपना टूटा। वह दौड़ी-दौडी नीचे आ मा से लिपट गई।

"अरे, रीता !" आखो मे खुशी छलकाती बोल पडी उसकी मा—"सुखुवा अभी आया था। बुलाया है तुम्हे अरुण की मा ने। जा, जल्दी कपड़े बदल ले !"

रीता मुड़ी कमरे की ओर। मा उसकी भुजाओ को पकड़ एक क्षण उसकी ओर देखती रही। फिर अपने आँचल से उसका मुँह पोछ कर बोली—"वह फलो की टोकरी है। जाने लगना, तो महरी को ले लेना ! वह

उसे अरुण के यहाँ पहुँचा देगी।"

रीता के सारे शरीर मे विजली की तेजी आ गई। वह दौड़ी-दौड़ी कमरे मे गई, और सब से अच्छी साड़ी और ब्लाउज निकाल मिनटो मे पहन लिया। फिर जीजी की शादी मे आई कामदार चप्पलो को पैर मे डाल आदमकद आईने की ओर बढ गई। बालों को आकर्षक ढंग से सॅवारा। सुगन्धित पाउडर ने उसके गालो पर चिकनी गुलाबी विखेर दी, और लिप-स्टिक के सहयोग से उसके पतले होठ सुर्ख गुलाब की तरह खिल कर मुस्करा उठे। काली-काली काजल की बारीक लकीरों ने उसकी पलको को और भी लम्बा कर दिया। ललाट पर कुमकुम का टीका खिल उठा, जैसे तारिका-रहित आकाश के भाल पर पूर्णिमा का चाँद मुस्करा उठा हो, जैसे शान्त सरोवर की सतह पर किनारे की ओर एक लाल कमल खिल उठा हो। रीता एक क्षण तक सब-कुछ भूल उस कुमकुम के टीके को मुस्कराती आँखो से देखती रही कि सहसा उसे लगा, जैसे वह कुमकुम का टीका फैल कर उसकी माँग मे सिन्दूर की लकीर बन कर समा गया हो। वह तनिक शरमाई हुई-सी वहाँ से हट गई, और सर्प की खाल का बना हुआ बटुवा हाथ मे झुलाती हुई चल पड़ी।

अरुण की माँ रसोई-घर मे बैठी थी। रीता शरमाई हुई-सी रसोई-घर के दरवाजे की बगल मे दीवार से टिक कर खड़ी हो गई। महरी ने रीता की ओर भेद-भरी दृष्टि से देख कर आवाज दी—"अम्माँजी, छोटी बीबी आई हैं।" और सिर से फलो की टोकरी उतार कर आँगन की फर्श पर रख दी।

माँ दरवाजे पर लपकती आ कर आँगन मे देखने लगीं। रीता को महरी के पास न देख कर उन्होंने पूछा—"कहाँ है रे, रीता?"

महरी ने अपनी विनोद-भरी दृष्टि से रीता की ओर इशारा कर दिया। माँ ने आँगन मे आ दरवाजे की बगल मे देखा, रीता छुईमुई-सी पलकें झुकाये खडी थी। माँ एक क्षण तक अपनी मुस्कराती आँखो से उस लज्जा-

वरण मे ढँकी रूप की देवी-सी रीता को देखती रही, जैसे उनके सामने भीने बादल के पर्दे के पीछे पूर्णिमा का चाँद मुस्करा रहा हो। फिर वह हर्ष-विह्वल हो, रीता की बलैया ले, उसका हाथ पकड़ बैठक की ओर खींच ले गईं। उसे एक कुर्सी पर बैठा कर हाथ से उसकी ठुड्डी उठा कर बोली—"क्यो, बेटी, आज तू इतनी शरमाई हुई-सी क्यो है ? अम्माँ ने तुम्हे सब-कुछ बता दिया क्या ?"

रीता ने आँखे बन्द किये ही तनिक मुस्करा दिया।

"अच्छा, तू बैठ यहाँ। मै लाऊँ कुछ तेरा मुँह मीठा करने को !"—कह कर वह बैठक से बाहर भागीं, और आँगन मे खड़ी महरी से जा टकराईं। महरी आँखे मलकाती हट गई। माँ झेपती-सी आगे बढी कि महरी बोल पड़ी—"अम्माँजी, बहूजी ने यह फलों की टोकरी भेजी है।"

"ओह ! अच्छा, रुक तू मै आई !" कह कर वह आगे बढ़ गईं।

"अम्माँजी आज तो मै कोई बड़ा इनाम लूँगी !" मुस्कराती हुई महरी बोली।

"अच्छा, अच्छा, तुझे मुँह-माँगा मिलेगा आज !" मुड़ कर कहती हुई माँ कमरे मे घुस गईं।

थोड़ी देर मे एक हाथ मे मिठाइयो से सजी हुई प्लेट और दूसरे मे पाँच रुपये का नोट और दो लड्डू लिये माँ महरी के सामने आ कर बोली—"ले, अब तो खुश है न ?"

"ऊँहूं !" सिर हिलाती हुई हाथों को पीछे कर महरी बोली—"अबकी तो मै चुनरी लूँगी !"

"अच्छा, इसे तो ले ले। मै दूँगी तुझे चुनरी भी। भगवान् से विनय कर कि हमारी मनोकामना पूरी हो !"

"सब ठीक हो जायगा, अम्माँजी," नोट और लड्डू लेते कहा महरी ने—"हमारी रीता बीबी लछिमी हैं, लछमी ! बड़े भाग हैं अरुण बाबू के !

अच्छा तो अब मैं जा रही हूं। कब आऊँ बीबी को लेने ?"

"आ जाना दो-तीन घटे मे," कह कर माँ ने बैठक मे आ एक छोटी मेज रीता के सामने खींच कर उस पर मिठाइयों की प्लेट रख दी। फिर एक लड्डू उठा कर रीता के मुँह मे डालती बोली—"खा, बेटी !"

रीता आँखे झुकाये कनखियो से माँ को देखती धीरे-धीरे मुँह चलाने लगी।

"आज बहुत दिनों पर आई थी तुम्हारी अम्माँ मेरे यहाँ दोपहर को। जानती है तू ?"—पास की एक कुर्सी पर बैठ कर माँ बोलीं।

रीता ने सिर हिला दिया।

"अरे, हाँ, तू तो कालेज गई रही होगी उस वक्त। बहुत रो रही थीं बेचारी नीता को याद कर। मैंने बहुत समझाया उनको। भाग्य-भाग्य की बात है। सयोग तो तुम्हारा और अरुण का था। अरुण और नीता का सयोग होता, तो क्या अरुण को इतने बड़े देश मे नौकरी नही मिलती, जो वह चला गया बिना किसी से कुछ कहे-सुने कलकत्ते के किसी व्यापारी का एजेन्ट बन दक्षिण अफ्रीका को। उसकी बाते तो मुझे अब न मालूम हुई हैं। वह चाहता था कि अच्छी तनख्वाह पर कुछ दिन नौकरी कर काफी रुपया कमा लेगा। तब अचानक यहाँ आ कर सबको आश्चर्य मे डाल देगा। और तब यहाँ कचहरी मे अपनी प्रेक्टिस शुरू करेगा। इसी बीच, देखो भवितव्यता, छिड गई लडाई। बन्द हो गया मुसाफिरों का आना-जाना। छटपटा कर रह गया वह। बाद मे, कहता था वह कि उसने कई पत्र और तार दिये। न जाने क्या हो गये वह सब। एक भी तो नही मिला हमे। क्या ठीक था उस वक्त डाक और तार का। फिर तीन साल बाद बडी मुश्किलों से मुसाफिरों के एक जहाज मे उसे स्थान मिल पाया। आया ले कर दौलत। उसे क्या मालूम था कि उस दौलत से बेशकीमत दौलत उसकी लुट गई घर पर !"—कहते-कहते माँ की भीगी आँखे रीता पर उठ

गई। रीता के खिले चेहरे पर कुहासा-सा छा गया था। माँ उसे उस रूप मे देख कर अपने ही पर झुँझला उठी कि क्यो ले कर बैठ गई वह अस-मय की गाथा। उन्होने आँचल के कोने से अपनी आँखे पोछ लीं। फिर जैसे सब गुजरी बातों को छाती मे दबाती हुई बोली—"जाने दे, बेटी! अब क्या रक्खा है उन बातो मे? अब तो तुम्हे ही बसाना है यह उजड़ा घर। तू तो देख ही रही है अरुण को। बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर आज एक हफ़्ते से कचहरी जा रहा है। फिर भी उखड़ा-उखड़ा-सा रहता है, जैसे किसी काम मे उसकी तबीयत लगती ही नही। अब तू सँभाल उसे। तू ही छा जा उसके दर्द-भरे दिल पर सपनों के गीत बन कर!"

"मै प्रयत्न करूँगी, चाचीजी! आप आशीर्वाद दीजिये!"—कह कर रीता उठ कर माँ के चरणों पर झुक गई, माँ ने उसे उठा कर, छाती से लगा, उसके सिर पर स्नेह का हाथ रख दिया।

४

कचहरी से वापस आ अरुण दरवाजा खोल कर अपने कमरे के अन्दर हुआ, तो वहाँ की सब चीजों को तरतीब मे देख उसका पारा चढ गया। गुस्से मे काँपता वह दो-दो, तीन-तीन सीढियो को एक-एक डग मे फाँदता हुआ छूटते ही माँ पर बरस पड़ा—"क्यो अम्मा, गई थी तुम मेरे कमरे मे?"

माँ पास बैठी हुई रीता को छिपाती हुई बोलीं—"है, हैं! क्या कहा तूने? मुझे क्या पड़ी है, जो तेरे कमरे मे जाऊँ? नही छोड़ेगा तू अपना दिवानापन? जा-जा!"

"अम्माँ, तुमसे मैने लाख दफे कहा कि मेरे कमरे मे सफाई-वफाई की

कोई जरूरत नही ! फिर क्या सूझी थी आज तुम्हे ?

"मै क्यों करूँगी तेरे कमरे की सफाई, रे ? यह तो रीता थी, जो मेरे मना करने पर भी तेरे कमरे मे आज चली गई थी। मुझे क्या पता कि क्या किया उसने वहाँ ?"

"ओह, रीता देवी थी !" कह कर चला गया अरुण अपने कमरे मे।

"देखा, बेटी ! मै कह रही थी न कि न जा उसके कमरे मे। नाहक बरस पडा मुझ पर।"

"कुछ कहा तो नहीं उन्होंने, चाचीजी," 'नीबू-निचोड' पर एक सन्तरा दबाती रीता बोली।

माँ हँस पडी। फिर बोली—"अरे, कहेगा क्या, रे ! पागल वह थोड़े ही है, जो नही जानता कि रीता उसकी"

"जाओ, चाचीजी, मै नही आऊँगी तुम्हारे यहाँ !' बीच ही मे शरमाई-सी बोल पडी रीता।

"अच्छा, ले अब मै कुछ न कहूंगी। मै जा रही हू अपनी पूजा मे।"—कह कर माँ चली गई।

आलमारी से शीशे का गिलास उतार रीता ने उसमे सन्तरे का रस भरा। और उसे ले अरुण के कमरे के दरवाजे के सामने आ ठिठक गई। दबी हुई नजर से उसने देखा, अरुण मेज पर रखे गिलास मे शराब उँडेल रहा था। रीता ने शरबत का गिलास आँचल मे छिपा लिया, और दुखे दिल से वापस होने को मुडी। अरुण ने दरवाजे की ओर नजर डाल शराब का गिलास उठना चाहा कि उसकी नजर रीता पर गई, और उसके मुँह से अचानक निकल गया—"रीता देवी !"

रीता ने मुड कर अपनी बेबस आँखे अरुण पर उठा दी।

"आइये न !" शराब का गिलास मेज के नीचे छिपा कर अरुण बोला।

रीता शरबत का गिलास आँचल मे छिपाये ही, ठमकती हुई कमरे में आ गई।

"बैठिये न !" पलंग की ओर इशारा करते हुए अरुण ने कहा ।

बैठ गई रीता । और अरुण की निगाह बचा कर उसने पलग के नीचे रख दिया सन्तरे का गिलास ।

"देखिये, रीता देवी, आज आपसे मुझे सख्त शिकायत है !" एक कुर्सी खीच कर रीता के सामने बैठते हुये अरुण ने कहा ।

"मुझे मालूम है । मैने आज कमरे की सफाई कर दी है, यही न आप को बुरा लगा ?"—बोली रीता ।

"हाँ, रीता देवी, आपको यह बड़ी अजीब बात मालूम होगी कि मुझे आज लगता है, जैसे यह मेरा कमरा नही है, जैसे किसी अजनबी जगह मे आज मै डाल दिया गया हू, जैसे यह कमरे की सफाई एक नई उलझन बन कर मेरे दिमाग को परेशान कर रही है ।"

"क्षमा करें, अरुण बाबू ! मुझे क्या पता था इन सब बातो का ? वरना क्या मै आज जान-बूझ कर आपके सामने एक नई उलझन खड़ी करती ? मेरा तो यही अनुभव है कि सफाई एक अच्छी चीज है, साफ-सुथरी जगह पर बैठना भी अच्छा लगता है ।"

"हाँ, बात तो आप ठीक कह रही हैं । मगर, रीता देवी," आँखों को सिकोड़ अरुण बोला—"आप क्या कहेंगी मेरे दिमाग को, जो सफाई और तरतीब से अपना मेल नही बैठा पाता ? जैसे वह स्वय उलझा हुआ है, वैसे ही अस्तव्यस्त, मैले-कुचैले वातावरण मे उसे आराम मिलता है । वह इसी बात का आदी हो गया है । आपको क्या मालूम कि मेज पर जमी हुई धूल, राखदान के ऊपर और उसके बाहर पड़ी हुई अध-जली सिगरेटे और बिखरी हुई राख, इधर-उधर उलटी-पुलटी किताबे, दीवारो के कोनो मे लटके हुये झोल, टँगी हुई तस्वीरो के शीशो पर छाई हुई गर्द, पलंग पर सिकुड़ी हुई मैली-कुचैली चादर और ऐंठे हुये तकिये, फर्श पर बिखरे कागज के टुकड़ों, सिगरेट के खाली डिब्बो और कचड़े के बीच जब मै अपना

अस्तव्यस्त मस्तिष्क लिये आ बैठता हू, तो ये सब चीजे कैसी रहस्य-भरी बाते मुझसे करती हैं। आज आपकी की हुई सफाई और दी हुई तरतीबे तो जैसे मेरी उलझनों को बढ़ाने के लिये विरोधाभास का रूप धारण कर मेरी आँखो के सामने खड़ी हो गई हैं। अगर आप यह जानती, तो क्या मेरे अकेलेपन, सूनेपन और अन्धकार के मूक साथियों को यो। झाड़ू मार कर बेदर्दी से निकाल कर मुझसे उन्हे जुदा कर देतीं ?"

"नहीं-नही, अरुण बाबू! सचमुच आपके अकेलेपन के उन अच्छे साथियो पर मुझे रहम करनी चाहिये थी! मगर मै क्या करूँ अपने को, जो मेरी समझ मे आपकी कोई बात नही आती ? और फिर आप अकेले कैसे हैं। आप हैं, अम्माँ हैं, और दुनिया से गाफिल होने के लिये" . अपना निचला होठ दाँतों से दबा कर, एक तीव्र दृष्टि अरुण पर फेकती रीता चुप हो गई।

"ओह ! मै समझा आपका मतलब," मेज के नीचे से शराब का गिलास उठा मेज पर रख कर अरुण ने कहा—"इससे था न ?"

"जी हाँ !" जैसे जहर का घूँट पीती रीता बोली।

-"खूब याद दिलाई आपने इसकी ! सचमुच, रीता देवी, यह मेरा सब से बढ कर हमदर्द और गमगुसार दोस्त है !"—मुस्कराता हुआ अरुण बोला।

"यह, यह शराब ! छिः ! यह तो बडी बुरी चीज है ! क्यो पीते है आप इसे ?"—कह कर रीता ने मुँह फेर लिया।

ठहाका मार कर हँस पडा अरुण। फिर बोला—"आप इसे बुरा कहती हैं ! लेकिन इसने मुझ पर अमृत का असर किया है। इसी की बदौलत आप मुझे अपने सामने देख रही हैं। इसी ने मेरे टूटे दिल के टुकड़ों को जीवन-रस से जोड दिया है।"

"अच्छा, तब तो बड़ी अच्छी दवा है यह !" बनती हुई रीता बोली।

"जी !" खुश होकर अरुण ने कहा ।

"अरुण बाबू, जैसे सब बाते आपकी अजीब है, वैसे ही यह भी है कि आप रोग-मुक्त हो जाने पर भी दवा का सेवन किये ही जा रहे हैं । शायद आपको डर है कि दवा छोड देने पर कही फिर न रोग उभर आये । क्यो ?"—कह कर होंठो मे मुस्काती एक रहस्य-भरी दृष्टि फेकी रीता ने अरुण पर ।

"जी हाँ, डर तो है !" अपने को टटोलता अरुण बोला—"मगर सच तो यह है कि अब मुझे इसकी आदत पड गई है ।"

"यह भी एक ही रही, अरुण बाबू !" हँसती हुई रीता बोली—"कहीं दवा की भी किसी की आदत पड़ती है ?"

"मेरा मतलब इसके नशे से था," झिझकता हुआ अरुण बोला ।

"तब तो बुरा हुआ, अरुण बाबू ! साफ क्यो नही कहते कि आप शराब दवा के लिए नहीं, नशे के लिये पीते हैं ?"

"हाँ, रीता देवी, सच तो यही है कि अब मैं शराब नशे ही के लिये पीता हूं !" आँखो मे गहरी निराशा भर रीता की ओर देखता अरुण बोला—"जिस शराब ने मेरी वेदनाओं को घुला कर बहा दिया, अब वही शराब मेरे जीवन का नशा बन मेरी आत्मा पर छा गई है । इसी नशे की छाया में मेरा जीवन साँसे लेता है । इसके बिना मै निर्जीव-सा हो जाता हूं, मुझे सारी दुनिया सूनी-सूनी-सी लगती है ।" कहते-कहते अरुण की आँखे काँप कर बन्द हो गई । बिना शराब के जीवन की कल्पना मात्र से ही जैसे वह काँप उठा हो ।

"अरुण बाबू, मै तो कहूं कि जीवन स्वय ही एक नशा है, जिसकी खुमारी मृत्यु तक बनी रहती है ! जिसमे जीवन का नशा नही होता, वही किसी दूसरे नशे का सहारा ले जीने की कोशिश करता है !"

"इसी बात को, रीता देवी, मैं इस तरह कहूंगा । नशा ही जीवन है ।

बिना नशे का जीवन कोई जीवन नही। चाहे वह नशा शराब का हो या प्रेम का, यौवन का हो या रूप का, सेवा का हो या भक्ति का, धन का हो या यश का, लालसा का हो या लिप्सा का, चाहे और किसी वस्तु का।"

"ठीक! अब मेरी समझ मे आपकी बात आ रही है। अरुण बाबू, क्या मै जान सकती हू कि आपने अभी जीवन के जितने नशो के नाम गिनाये हैं, उनमे से शराब के ही नशे को आपने क्यो पसन्द किया?"

"यह तो आपको मालूम ही है। रीता देवी, मेरे जीवन मे भी कभी कोई और नशा था, किन्तु जब उस नशे का स्रोत सहसा सूख गया, तो मुझे मजबूर होकर इस नशे को अपनाना पडा।"

"तो एक नशा दूसरे नशे का स्थान ले सकता है?"

"क्यो नही? मगर हाँ, उनमें तीव्रता का बराबर होना आवश्यक है।"

"तो मै लाई हू आपके लिए एक दूसरा नशा!" साहस कर कहते हुये रीता ने पलग के नीचे से सन्तरे का गिलास ऊपर उठाया। उसकी आँखो में उत्कट प्रेम के लाल डोरे झलमला उठे।

"इसमे नशा?" गिलास की ओर देखते कौतूहल से अरुण बोला—"सन्तरे के रस मे नशा!" कह कर ठहाका मार कर जोर मे हँस पडा।

रीता की आँखो के डोरो की लाली गम्भीरता में बदल गई। उसने दबी हुई एक ठडी साँस ली।

"अरे, आप चुप क्यों हो गई?" रीता की आँखो मे देखता सन्न-सा हो अरुण बोला—"आप एकाएक इतनी गम्भीर क्यों हो गईं? ये, ये आपकी पलकें क्यों काँप रही हैं? इनमें, इनमे यह आर्द्रता कैसे? ओह, ओह, आप तो रो रही हैं!"

रीता की भरी आँखो से चू पडी आँसू की बूँदे टप्-टप् सन्तरे के गिलास मे।

"रीता!" जोर मे भावावेश मे चिल्ला पडा अरुण।

"रीता !" यह नन्हा-सा हृदय के आवेश से भरा अरुण का सम्बोधन जैसे शत-शत मधुर-मधुर गीतों की झंकार बन लहरा उठा रीता के मानस पर। पूजा की सफलता की किरणे चमक उठी उसकी आँसू-भरी आँखो मे। उसने गिलास अरुण की ओर बढ़ा दिया। अरुण मुँह बाये, आँखो मे आश्चर्य लिये एक क्षण तक उस गिलास की ओर देखता रहा। फिर सहसा अनियन्त्रित-सा बढ़ गया उसका हाथ। ले लिया उसने गिलास रीता की ओर मलकती आँखो से देखता। फैल गये उसके होठो के कोने मन्द मुस्कान से। पी गया वह प्यार के आँसुओ की शराब आँखे मूँद कर।

झर-झर झरने लगा रीता की आँखो से हर्ष।

भीन गया प्यार का नशा अरुण के रोम-रोम मे। उठा कर फेंक दिया उसने शराब-भरा गिलास खिड़की के बाहर।

"रीता !" बोला वह आतुर स्वर मे।

रीता ने उठा दी अपनी प्यार-विह्वल आँखे।

"रीता !" रीता का हाथ अपने हाथो मे ले कर बोला अरुण—"उस दिन तुम्हारी जीजी का मन रखने के लिये मैने वचन तो दे दिया था, किन्तु स्वप्न मे भी यह न सोचता था कि कभी अपना वचन निभा पाऊँगा। उसकी माँग को मैने एक वहम से अधिक महत्व न दिया। और एक वहम के लिये मै तुम्हारे जीवन के साथ अन्याय कैसे कर सकता था? मुझे क्या मालूम था कि नीता मे जो मैने खो दिया, वह तुम मे मिल सकता है, नीता की तरह तुम भी मेरे हृदय पर प्यार का नशा बन कर छा सकती हो !"—कह कर अरुण ने रीता के कोमल हाथ दबा दिये। रीता का सिर झुक गया। उसके बालों की सुगन्धि अरुण की साँसो मे भर गई।

"रीता, ओ रीता !" नीचे से माँ की आवाज आई—"महरी आई है। जायगी न अब तू ?"

"आई, चाचीजी !" उठती हुई रीता बोली।

"नही, अभी नही जाने दूँगा तुम्हे !" मचल पड़ा अरुण।

"नही, ऐसा न कीजिये ! छोड़िये भी !"—सिर झुकाये ही हाथ छुड़ाते रीता बोली।

"रीता !" प्यार-भरी झुँझलाहट मे अरुण बोला।

रीता ने अपनी मुस्कराती आँखे तिरछी कर दी। मिल गया सब-कुछ अरुण को। वह मुस्कराता बोला—"अच्छा, चलो, मै पहुँचा आऊँ तुम्हे !"

नीचे आ अरुण ने कहा माँ से-"अम्माँ मै अभी पहुँचा कर आता हू रीता को।"

अरुण पहुँचाने जा रहा है रीता को ! माँ को लगा, जैसे किसी ने उन्हें अपने हाथो मे उठा कर उछाल दिया हो आकाश मे, जैसे जेठ की दोपहरी मे बर्फीली हवा का एक झोका सहसा शरीर को छू गया हो। एक क्षण के बाद जैसे वह अपने मे आ हर्ष-विह्वल आँखे मलकाती बोली—"तुम जा रहे हो रीता को पहुँचाने ? अच्छा, जरा ठहरो !" कह कर दौड गई वह पूजा-घर मे। और दो प्लेटों मे पूजा का प्रसाद लिए लपकती हुई आ कर एक-एक प्लेट अरुण और रीता के हाथो मे थमा दिया।

रीता खा रही थी, अरुण खा रहा था। और माँ उनके सामने खडी हृदय की उमग दबाये मुस्कराती हुई उनकी ओर देख रही थी। सहसा उनकी आँखे ऊपर उठ गई। उन्हे लगा, जैसे आकाश से झर रही हो गुलाब की पखुरियाँ रीता और अरुण पर।

५

रीता बहूरानी बन आ गई। अरुण का घर नक्षत्र-लोक की तरह जगमगा

उठा। अरुण की माँ को तो रीता का अपने घर में प्रवेश एक मगलमयी देवी का शुभागमन ही प्रतीत हुआ। जिस रीता के कारण अरुण का भटका जीवन राह पर आ लगा, माँ की आँखो की जाती हुई ज्योति पुनः लौट आई, उस रीता के प्रति हृदय मे लहराते स्नेह और असीम श्रद्धा से बरवस ही उनका सिर झुक गया। उन्हे लगा, जैसे वह एक पुजारिन बन गई हो, और रीता एक देवी की प्रतिमा बन कर उनके सामने मुस्करा उठी हो।

'रीता, तू मेरी वहूरानी ही नहीं, मेरे मन्दिर की देवी भी है! मै पूजा करती रहूगी तेरी जब तक जीवित रहूगी। क्या हुआ जो तू बच्ची है और मै बूढी? देवी देवी है और पुजारी पुजारी! तेरे शाश्वत सौन्दर्य, शाश्वत यौवन, और शाश्वत स्नेह की छाया में बैठी हुई बूढी पुजारिन अपने जीवन-पुष्प को एक-एक कर तेरे चरणों मे चढा देगी, और अन्त मे मुक्ति का प्रसाद ले तेरी ही गोद मे जीवन विसर्जन कर देगी!' अरुण की माँ आत्मा की गहराइयो में डूबी-डूबी चिन्ता तल्लीन हो गई।

"माँजी, नहा-धो कर आप ऐसे क्यों बैठ गई?" सुखुवा माँजी की बन्द आँखे देख कर बोला।

माँ का ध्यान उचट गया।

"पूजा की देर हो रही है न! उठिये!"

"माली फूल दे गया?" माँ ने उठते हुये पूछा।

"कब का फूल दे कर वह चला गया! पूजा की थाली भी सजा दी है मैंने पूजा-घर मे। लीजिये यह जल।"

माँ कमडल का जल ले पूजा-घर की ओर बढ गई।

पूजा-घर में मोर मुकुटधारी श्रीकृष्ण की सगमरमर की त्रिभगी मूर्ति खड़ी थी। पार्श्व मे श्रीराधा विराज रही थी। श्रीकृष्ण बशी बजाने मे तन्मय हो रहे थे। श्रीराधा उनकी ओर मन्त्रमुग्ध-सी देख रही थीं। माँ अपनी कल्पनाओं मे खोई-खोई-सी ही वहाँ पहुँची। राधा की मूर्त्ति उनके हृदय की

मूर्त्ति बन मुस्करा उठी। कृष्ण की मूर्त्ति की ओर तो उनका ध्यान गया ही नहीं। उन्होंने मूर्त्ति के चरण पखार थाली के फूल चढा दिये। फिर आँचल गले में डाल पैरों पर बैठ कर सिर नवा दिया।

सुबह के कालेज से लौट किताबें हाथ में लिये ही पूजा-घर के द्वार पर ठिठक कर पीछे आते सुखुवा से रीता ने पूछा—"तो आठ ही बजे से चाचीजी यों पूजा में बैठी हैं?"

"जी, बहूजी! कचहरी से लौट कर अरुण बाबू ने बहुत देर तक इनके उठने का इन्तजार किया। जब वह न उठीं, तो बिना भोजन किये ही उपर चले गये। मैंने उनसे माँजी को उठाने के लिये कहा, तो उन्होंने कहा कि नहीं, अम्माँ की पूजा में विघ्न डालना उचित नहीं। तुम उठाओ न इन्हें, बहू! बड़ी देर हो गई आज। गरमी का दिन है। बिना मुँह में कुछ डाले बैठी हैं अब तक। कहीं इनकी तबीयत खराब न हो जाय।"—कुछ चिन्तित हो सुखुवा बोला।

रीता माँ की ओर देख कर मुस्कराई। फिर धीरे से उनके पीछे जा उनके कन्धे पर हाथ रख बोली—"चाचीजी, चाचीजी! उठिये न अब! देखिये, मैं कालेज से लौट आई। ग्यारह बज रहे हैं।" कह कर धीरे से उनका कन्धा हिला दिया।

माँजी की तन्मयता टूटी। वह अकचका कर उठ खड़ी हुईं। और रीता और राधा की मूर्त्ति को आमने-सामने देख कर जैसे वह सहसा पहिचान न सकीं कौन राधा है और कौन रीता।

माँ की आँखों में विस्मय देख रीता बोली—"क्यों चाचीजी, आप ऐसे क्यों देख रही हैं?"

"ओह, बेटी रीता! कुछ नहीं बेटी, कुछ नहीं!"—कह कर उन्होंने झुक कर राधा के चरणों से एक गुलाब का फूल उठा रीता के बालों में खोंस दिया। रीता उनके चरणों पर झुक गई। माँ उसे उठा छाती से लगा गद्गद

हो गईं।

"चाचीजी," राधा की मूर्त्ति के चरणों में आँखें गड़ाये रीता बोली—"पूजा के सारे फूल श्रीराधा के ही चरणों मे आपने क्यों डाल दिये ? श्रीकृष्ण के चरणों पर तो एक भी फूल नही है !"

माँ की दृष्टि एक-ब-एक श्रीकृष्ण की मूर्त्ति की ओर मुड़ गई। उन्हें लगा जैसे श्रीकृष्ण की मूर्त्ति मुस्करा कर कह रही हो—"मै जानता हूं सब-कुछ !"

"सुना तुमने, श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि वह जानते हैं सब-कुछ !" रीता की ओर मुड़ कर माँ ने कहा।

"क्या जानते हैं वह भला ? मैं तो कुछ नही समझ रही हूं।"—रीता ने उत्सुक हो कहा।

"यही कि आज न तो उनकी पूजा हुई है, न उनकी राधा की। आज तो पूजा हुई है मेरी गृह-देवी की, मेरे हृदय की देवी की !"

"हृदय की देवी की ! क्या रम रही हैं श्रीराधा ही आपके हृदय में ? किन्तु, चाचीजी, श्रीराधा की पूजा मे श्रीकृष्ण का भाग भी तो अनायास ही मिल जाता है !"

"ओह यह तो मै भूल गई थी ! किन्तु क्या जानती है तू कि कौन देवी है वह, जो आज राधा के रूप मे मेरी आँखो के सामने खड़ी हो गई थी ?"

"श्रीराधा के रूप मे श्रीराधा ही तो खड़ी हैं आपके सामने !"

"ऊँहू !"

"फिर ?"

"आज श्रीराधा के रूप मे तुमने आकर मेरी पूजा ली है !"

"चाचीजी !" माँ के चरणो पर गिर कर गिडगिड़ा पड़ी रीता—"यह आप क्या कह रही हैं ? मेरे जीवन की मुक्ति तो आपके इन चरणो की पूजा मे है !"

"पगली !" रीता को हाथो से उठाती विह्वल स्वर मे माँ बोली—"सीता

क्या जगद्वन्दिनी होकर भी कौशल्या की पूजा नही करती थीं ?" कह कर माँ ने अपने आँचल से रीता का मुँह पोंछ दिया, और प्रसाद की थाली उठा उन्होंने बाँये पार्श्व मे झुकी हुई रीता को लिये पूजा-घर से निकल आईं।

"ले, बेटी, प्रसाद ! और आ, तेरी थाली लगा दूँ। तुझे बड़ी भूख लगी होगी।

"लेकिन, चाचीजी," प्रसाद लेने को हाथ बढाती हुई रीता बोली—"उन्होंने भी तो अभी तक नही खाया है।"

"ओह, अरुण !" अरुण की याद आते ही प्रसाद का चम्मच झन्न से थाली मे उनके हाथ से छूट कर गिर पड़ा। अब तक रीता ही रीता में खोई हुई माँ अरुण की बात उठते ही जैसे अकचका गई। रीता के प्रति जो भक्ति की ज्योति उनके हृदय मे जल उठी थी, जैसे सहसा उस पर अरुण की छाया पड़ गई। उनकी मुद्रा विकृत-सी हो गई। आँखों की चमक कुछ मद्धिम-सी पड़ गई।

"चाचीजी ! आप चुप क्यों हो गई ? आपका चेहरा सहसा उदास क्यों हो गया ?" कुछ न समझ रीता बोली।

माँ के होंटों पर एक विकृत मुस्कान बिखर गई।

"चाचीजी ! चाचीजी !" माँ के कन्धे पर हाथ रखती व्यग्र होकर रीता बोली।

"घबरा न, बेटी ! क्या करूँ मैं अपने मन को ? चाँद मे कलक है, फूल में काँटे ! मै सोच रही हू कि कहाँ तुझ-जैसी देवी और कहाँ अरुण !"

"ऐसा न कहिये, चाचीजी ! वह मेरे देवता हैं !" सिर झुका कर रीता बोली।

"इसमें भी तुम्हारी ही महत्ता है, बेटी ! अरुण मेरा बेटा है, मेरे घर का एकमात्र उजाला है। फिर भी मुझे लगता है, जैसे तुम्हें उसकी बहू बना कर तुम्हारे साथ मैंने अन्याय ही किया है।"

"नहीं, चाचीजी ! इस तरह की बाते कर के मुझे और अधिक शर्मिन्दा न करे । यह मेरा सौभाग्य है कि अपने हृदय के चिरपूजित देवता के चरणो मे मेरी पूजा स्वीकृत हुई । आप ईश्वर के लिये अन्यथा न सोचे, चाचीजी !"—माँ की गोद मे सिर डाल रीता सिसक पड़ी ।

"बेटी !" रीता के बालो को सहलाते माँ बोली—"आज मुझे तुम्हारे जिस दिव्य रूप का साक्षातकार हुआ है, उसके सामने सब-कुछ खोल कर रखने मे तुझे तनिक भी भय नही लग रहा है । तुम्हारे यहाँ आने के पहले मुझे अरुण की चिन्ता थी । मै सोचती थी कि तुम्हे पा अरुण अपना दुख भूल जायगा, उसके दुर्व्यसन छूट जायँगे । माँ होते हुए मै किस मुँह से कहूं कि तुम्हारे कारण अरुण बहुत-कुछ सुधर तो गया, किन्तु अब तक उसने शराब नही छोड़ी । बेटी, अब मुझे अरुण की नही, तुम्हारी चिन्ता है कि कही उसका यह दुर्व्यसन तुम्हे भी न ले डूबे । तुम्हे अपने घर की रानी बना कर जहाँ मै इतनी खुश हुई, आज उस रानी का दायित्व ही जैसे मेरे हृदय पर चिन्ता का बादल बन छा गया है । अगर अरुण ने शराब पीना न छोड़ा, तो"..

"चाचीजी आप यह क्या कह रही हैं ? वह अब शराब नहीं पीते !"—सिर उठा कर रीता ने कहा ।

"मेरी भोली बच्ची ! काश, ऐसा ही होता !" एक ठडी साँस ले माँ बोली—"तेरे ख्याल से भले ही उसने घर मे शराब लाना छोड दिया, किन्तु मुझे इस बात का पक्के तौर पर पता है कि वह अब भी बाहर शराब पीता है ।"

"हैं ! क्या यह सच है ? चाचीजी, क्या वह सचमुच बाहर शराब पीते हैं ?"—कहते-कहते रीता की भीगी आँखे माँ के चेहरे पर फैल गई । उनकी तरलता मे जैसे चिनगियाँ फूट रही थीं ।

माँ ने सामने शून्य मे देखते सिर हिला दिया ।

रीता तड़प कर भागी। और जोर से हाँफती हुई ऊपर अरुण के कमरे मे जा खड़ी हुई।

"रीता, आ गई तुम ?" अपनी गोद मे पडी किताब पर आँखे झुकाये ही अरुण बोला—"अम्माँ पूजा से उठ गई ?"

रीता का मस्तिष्क सनसना रहा था। उसकी आँखें लाल हो रही थी। होंठ काँप रहे थे।

रीता से कुछ न सुन अरुण ने आँखे ऊपर उठाई। सामने रीता का वह रूप देख हडबडा कर वह उठ खड़ा हुआ। किताब हाथ से छूट कर गिर गई। उसके मुँह से सहसा भय-मिश्रित स्वर मे निकल पड़ा—"रीता !"

रीता वैसे ही खडी रही पत्थर की बुत बनी।

"रीता," सँभल कर अरुण बोला—"क्या हुआ है तुम्हें ? ऐसे क्यों हो रही हो ?"

रीता की आँखो की लाली गाढी हो गई। होंठ फडफड़ा उठे।

आवेश मे अरुण उसके कन्धो को पकड कर झकझोरता बोला—"रीता ! रीता ! मुझे पागल मत बनाओ ! बोलो !"

रीता का सिर अरुण की गोद मे लुढक गया। उसकी आँखो की लाली पर बादल छा गये। रुँधे स्वर मे वह बोली—"आप से मुझे ऐसी आशा न थी !" कहते-कहते आँखो मे छाये बादल बरस पडे। वह जोर-जोर से सिसकने लगी।

"क्या किया मैने, रीता ? साफ-साफ क्यो नही कहती ?"

"आपने अभी तक शराब पीना न छोडा ?" सिसकती हुई रीता बोली।

"बस ! इतनी-सी बात के लिये तुमने अपने को इतना परेशान कर डाला !" तनिक मुस्कराते हुये अरुण ने कहा—"आओ, आओ, बैठो ! तुम ऐसे भी मुझसे पूछ सकती थी। खामखाह इतनी दुखित हुई तुम !"

रीता को पलग पर बैठा कर, स्वय उसके सामने एक कुर्सी पर बैठ

कर अरुण ने कहा—"रीता, मैंने शराब छोड़ दी थी। किन्तु उस दिन जब मेरे हाथ मे तुम्हारा हाथ पुरोहित ने दिया, तो अचानक मेरी वह पुरानी बीमारी फिर उभर गई। मैंने सोचा, तुम्हारे सहयोग से दबा लूँगा उसे, पर मै असफल रहा। विवश होकर मुझे फिर शराब की शरण लेनी पडी। मैं फिर पीने लगा। किन्तु यह जान कर तुम्हे खुशी होगी कि इस बार मैं पहले जितना नही पीता। धीरे-धीरे उसे भी कम कर रहा हूं, और अब तो जब भी पीने बैठता हू, यही सोचता हूं कि यह मेरा आखिरी प्याला है। फिर भी वह आखिरी प्याला खत्म होने पर अभी तक नही आया। मै इस पर अधिकार पाना चाहता हूं, रीता, मगर अभी तक मै सफल नही हो पाया। फिर भी एक-न-एक दिन तो"

बीच मे रीता सिर झुकाये बोल पडी—"आप को मालूम नही कि आपके इस व्यसन से चाचीजी कितनी दुखी हैं! यह मेरा दुर्भाग्य है कि अपना सर्वस्व देकर भी मैं पूर्णतः आपको अपना न बना सकी!" आखिरी शब्द कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई। वह सिर झुकाये ही उठ खडी हुई।

"नही-नही, रीता! मुझे गलत न समझो! मै अब सब तरह से तुम्हारा ही हू!"—उठ कर रीता की बाँह पकड कर आजिजी के स्वर मे अरुण ने कहा।

"इसे तो मै उसी दिन मानूँगी, जब आपका आखिरी प्याला सचमुच आखिरी प्याला ही होगा! अगर भाग्य मे रहा, तो वह दिन देखने के लिये जीवित रहूगी, नही तो"

"रीता!" रीता के मुँह पर हाथ रख कर जोर से अरुण बोल पडा।

रीता की झुकी आँखो से आँसू की बूँदे फर्श पर चू पडी।

अरुण का दिल तडप उठा। वह अपने हाथ से रीता के आँसू पोछ गम्भीर हो बोला—"रीता, मै सपनो के ऊँचे पहाड से गिर कर लुढकता हुआ महागर्त की ओर जा रहा था। तुमने बीच मे रोक कर मुझे जीवन की धरती पर खड़ा कर दिया। मै अवाक्-सा तुम्हारी ओर देखने लगा। तुम्हारी प्यार-

भरी आँखो ने इशारा किया ! मै बीती सब-कुछ भूल कर उस इशारे पर झूम उठा । तुमने अपने हाथ बढा दिये । मैंने उन्हे चूम लिया । बस गया राजा-रानी का नया, निराला सपनो का देश !"

"मगर रानी को क्या मालूम था कि उसका राजा अभी तक पुराने सपनों को नहीं भुला पाया है !"

"नही-नही, रानी," बीच ही मे अरुण बोल पड़ा—"राजा उस फूलों के देश मे अब एक भी काँटा न रहने देगा ! निकाल कर फेकता है आज वह आखिरी प्याले का काँटा भी !"

"सच !" हर्षातिरेक से रीना बोल पडी । उसकी अरुण पर उठी हुई आँखे चमक उठीं ।

"हाँ, रानी !" कह कर अरुण ने रीता की ठुड्डी उठा कर उसकी आँखो मे अपनी आँखे डाल दी ।

रीता की आँखो की गर्व-मिश्रित मुस्कान अरुण की प्यार-विह्वल आँखो में लाल-लाल डोरे बन झलमला उठी ।

बाहर दरवाजे पर दोनो हाथों मे दो परसी थालियाँ लिये माँ मुस्करा रही थी ।

प्रतीक्षा

गाँव से एक फर्लाङ्ग पूरब की ओर एक टीले पर एक विशालकाय पीपल के वृक्ष की छाया मे खड़ा है एक मिट्टी का मामूली घर अकेले। सुबह के वक्त जब उषा क्षितिज के द्वार पर अँगड़ाई लेकर अलसाई हुई इस वृक्ष की ओट से झाँकती है, तो गाँव से देखने पर इस घर की शोभा बडी मोहक हो जाती है। लगता है, मानो हरे चँदोवे के नीचे कोई स्वर्ण-मन्दिर मुस्करा रहा है। उस वक्त पीपल की डाली से लटके हुये नीडो मे पक्षी कलरव कर उठते हैं। मन्द-मन्द पवन मे पत्ते हिल-हिल कर ताल देने लगते हैं। सारा वातावरण मधुमय हो झूम उठता है। और तब पीपल की जड़ो मे बँधी हुई गाये अपनी आँखे खोल देती हैं। उन्हे अपने रात भर बिछुड़े हुये बछड़ो की याद आती है। खड़ी हो-हो चारो ओर अपनी स्नेहातुर आँखे नचाती हुई वे रँभाने लगती हैं। वात्सल्य-रस मे डूबी हुई इन माँओ की विकल पुकारे जब घर की दीवारो को छेद कर अन्दर जाती हैं, तो बूढी 'राम-राम' कहती हुई, अपने हाथो के आईने मे भाग्य की रेखाये देख, खटोले पर उठ-बैठती है। फिर कपड़े ठीक कर, बगल की चारपाई की ओर वह अपनी मलकती आँखे फेरती है। चारपाई पर नींद मे डूबी हुई अल्हड़ लछिया को देख उसकी गड्ढो मे धँसी हुई ज्योतिहीन आँखो मे अतीत की धुँधली यादे एक करुण मुस्कान बन उभर आती हैं। एक ठण्डी आह भर कर वह लछिया के सिरहाने आ

बैठती है, और उसके भोले मुखड़े पर बिखरी हुई लटों को एक-एक कर ऊपर कर, उसके ललाट को स्नेह-भरे हाथ से सहला कर कहती है—"लछिया !"

लछिया कुनमुना कर करवट ले, माँ की गोद मे अपना सिर दुबका गुलाबी नींद मे डूबी हुई मीठी-मीठी साँसे लेने लगती है। तब माँ की सूखी छाती मे स्नेह-रस उमड पड़ता है। वह कस कर उसका मुखडा छाती से चिपका लेती है। लछिया की शरबती आँखे खुल जाती हैं। माँ झुक कर उसके ललाट को चूम लेती है। लछिया कसमसा कर, एक अँगड़ाई ले, अपने दोनों हाथो को माँ के गले मे डाल, झूलती हुई-सी, उसकी आँखो मे अपनी खुमार-भरी, अधखुली आँखे डाल, मुस्करा कर पूछती है—"क्यो, माँ, सुबह हो गई ?"

"हाँ, बेटी !" लछिया के गालों को थपथपा कर माँ कहती है—"अब उठ ! कब से तेरी गाये तुझे बुला रही हैं !"

लछिया उठ कर जँभाई लेती खडी हो जाती है। माँ उसके कपड़े ठीक कर, उसके सिर पर आँचल ओढा देती है। लछिया अलसाये हुये डगो मे बढ कर कोने मे पडी रस्सी और दोहनी उठा, माँ की ओर एक मुस्कराती नजर फेंक, दरवाजा खोल बाहर हो जाती है। उसके हाथों मे दोहनी और रस्सी देख कर न जाने क्यों माँ की गहरी आँखों मे एक व्यथा का सागर लहरा उठता है।

लछिया बाहर आ, रस्सी और दोहनी एक ओर रख, उगते हुये सूरज को दोनो हाथ जोड कर, सिर नवा प्रणाम करती है। सूरज की सुनहली आभा उसके गोरे मुख पर मुस्करा उठती है। फिर वह कलरव-भरे पीपल के वृक्ष की ओर मुस्कराती हुई दृष्टि उठाती है। सिर का आँचल सरक कर नीचे आ जाता है। सौंदर्य का मुक्त हास्य देख कर पीपल की डालियाँ झूम उठती हैं। पवन का झोंका उसके खुले हुये लम्बे बालो को कन्धो पर बिखेर जाता है। पीपल का वृक्ष काँप जाता है। टहनियो से कुछ पत्तियाँ टूट कर उस पर बरस

पड़ती हैं। पक्षी चीख पड़ते हैं। वातावरण मे एक हलचल-सी मच जाती है।

'वो ज़ुल्फ़े दोश पर बिखरी हुई हैं,
जहाने आरज़ू थर्रा रहा है।'

हाथ मे मटका लिये माँ बाहर आ, लछिया का गिरा हुआ आँचल देख, चारो ओर शकित आँखों से देखती, दौड़ कर उसे उसके सिर पर ओढ़ा देती है। वातावरण शान्त हो जाता है। तब लछिया अपनी गायों की ओर देखती है। वे अपने सिर हिला-हिला उसे पास बुलाती हैं। वह पास की झोपड़ी से चारा निकाल उनके सामने डाल देती है। फिर किसी का मुँह हाथों मे ले चूम लेती है, किसी का माथा सहला देती है, किसी का पुट्ठा थपथपा देती है, और किसी के कान मे गुनगुना कर उसे किसी गीत की पक्ति सुना देती है। गायो मे से कोई लछिया के कन्धे पर अपना मुँह रख दबा देती है। कोई उसका हाथ चाट लेती है, कोई उसकी गोद मे अपना मुँह छिपाने का प्रयत्न करती है, और कोई अपनी आँखो मे प्रेम-रस भर उसकी आँखो मे उँडेल देती है। इस तरह प्यार का आदान-प्रदान कर लछिया एक-एक कर बछड़ो को छोड़, गायों का दूध दुह कर मटके मे भर देती है। माँ कपड़े का बिट्ठा उसके सिर रख, दूध-भरा मटका उठा कर, उसके हाथ में नपना थमा देती है। लछिया चल पड़ती है ठुमकती हुई गोकुल की ग्वालिन-सी दूध बेचने गाँव की ओर।

खेतो के बीच दूबो से ढँकी हुई टेढी-मेढी पगडडी पर जब तक लछिया दिखाई देती है, माँ उसकी ओर निर्निमेष नेत्रो से देखती रहती है। फिर कुछ बिसूरती हुई-सी टीले से उतर सरोवर की ओर बढ जाती है।

गाँव से अलग-थलग एक टीले पर बना हुआ अकेला घर इस बात का द्योतक है कि इस घर मे रहने वाले प्राणी बडे स्वावलम्बी, निर्भीक, स्वच्छन्द और अपने व्यक्तित्व को साधारण लोगो के व्यक्तित्व से भिन्न और अलग समझने वाले होगे। एक जमाना था, जब टीले पर खड़ा हुआ यह घर गर्व से अपना

सिर उठा कर गाँव के घरो को उसी तरह देखता था, जैसे किसी पहाड की चोटी पर बना हुआ बँगला घाटियो मे बनी हुई झोपडियो को देखता है। उस समय गाँव वाले इस घर की ओर 'किला' कह कर सकेत करते थे। इस घर मे सम्मान पाना वे अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना समझते थे।

लछिया के बाप तीन भाई थे। शरीर-यष्ठि, शक्ति और साहस मे तीनो एक-दूसरे से बढ-चढ कर थे। सारा गाँव और आस-पास का जवार उनका आतक मानता था। कोई ऐसा माँ का लाल नही था, जो अखाड़े मे उनमे से किसी का पीठ मे धूल लगा देता, कोई लठैत न था, जो अपने वार से उनमे से किसी का एक बाल भी टेढा कर देता। गाँवदारी के सगीन मामलो मे उन्हे अपनी ओर करने के लिये उस जवार के जमींदार उनके पैरो पर अपनी पगडी रख देते थे। वे तीन जवान अपने कन्धो पर लाठी रख जिस दल की ओर खडे हो जाते, उसकी जीत निश्चित हो जाती। उनकी बहादुरी और जवाँमर्दी के कितने ही कारनामे दिलचस्प कहानियो का रूप धारण कर गाँववालो मे कहे सुने जाते थे। एक बार जब गाँव के सारे पीपल के वृक्ष हाथी के चारे के लिये माँग लिये गये, तो गाँव के जमींदार के हाथी का पीलवान उनके पीपल से चारा काटने गया। उस घटना का वर्णन गाँव वालो मे इस प्रकार होता था—जब पीलवान को पीपल के नीचे हाथी खडा कर, हाथ मे गडासा ले उस पर चढते हुये एक भाई ने देखा, तो लपक कर उसने उसका पैर खीच कर इतने जोर से घुमा कर उसे फेका कि वह दस बीघे दूर जा कर गिरा। और हाथी के मस्तक पर ऐसी जोर से की लाठी जमाई कि वह चिग्घाडता हुआ वहाँ से भाग कर पागल हो गया। एक अवसर पर उन भाइयो को एक जगल मे साठ-सत्तर लठैतो ने घेर लिया था, और वे बच कर साफ निकल आये थे। उसका वर्णन गाँव वाले इस तरह करते—जब चारो ओर से उन तीनो भाइयो को अनगिनत लठैतो ने घेर लिया, तो उन्होने तडप-तडप कर ऐसी लाठी चलाई कि आकाश थर्राने लगा और धरती काँपने लगी।

उनके नाम पर कितने ही बिरहे लोगो ने आल्हा की तर्ज पर बना लिये थे, जिन्हें वे मूँछो पर ताव दे-दे कर गाते थे। एक बिरहे की कुछ पक्तियाँ इस तरह थीं—

'कवन मरद जनमा पिरथी पर
आँख दिखा दे इन भइयन को ?
बर्छा मार निकारें आँख
नजर उठावे जे बॅकुरन को !'

ऐसे थे वे तीनो भाई। देह बनाने के हौसले में उमर ढल गई, मगर उन्होंने शादी करने का नाम तक न लिया। दूध-मलाई खाना और घटो अखाड़े मे जमे रहना उनका काम था। बूढे माँ-बाप बहुओं के मुँह देखने का अरमान अपने दिल मे लिये ही दो ही साल के अन्तर से चल बसे। बेवा फूआ जब तक जीवित रही, बहू की रटन लगाती रही। पर वे सुनते कब थे ? आखिर उसने भी नामुराद ही आँखे मूँद ली। दो साल तक वे अपने ही हाथ से पकाते-खाते रहे। फिर दोनों छोटे भाइयों ने मिल कर लछिया के बाप से घर बसाने और वश चलाने की प्रार्थना की। लछिया की माँ बहू बन कर उनके द्वार पर उतरी। सूना घर गृह-लक्ष्मी के शुभागमन से भर-सा गया। रानी-सी प्रतिष्ठा हुई लछिया की माँ की। एक ही साल के बाद लछिया ने माँ की गोद भर दी। उसकी किलकारियो से पूरा घर मधुमय हो झूम उठा। पर लछिया का बाप तभी से कुछ उदास रहने लगा। जब उसकी यह उदासी बहुत दिनो तक बनी रही, तो उसके छोटे भाइयो ने उससे कारण पूछा। लछिया के बाप ने बताया कि वह जीवन मे एक ही सन्तान पैदा करना चहता था। भाग्य या दुर्भाग्य से लछिया हुई। उसे अब चिन्ता है कि जिस उद्देश्य को लेकर वह लछिया की माँ को ब्याह लाया था, वह उसे पूरा न कर सका। दूसरी सन्तान वह पैदा करेगा नही। लछिया से वश चलेगा कैसे ? भाइयों ने उसे बहुत समझाया, पर उसका कहना था कि शेर की बीवी बकरियों की तरह

बच्चे नहीं जनती। उसके भाग्य में जो था, सो हुआ। अब वह चाहता है कि उसके छोटे भाइयों में एक तो ब्याह करे ही, नहीं तो वंश की मर्यादा कैसे कायम रहेगी।

बहुत कहने पर मॅझला भाई ब्याह करने को तैयार हुआ। अपनी पसन्द की जगह लछिया के बाप ने उसकी शादी तय की। बरेच्छा चढ गया, और अगली लगन में शादी की बात पक्की हो गई। लछिया के बाप ने निश्चिन्तता की साँस ली। लछिया की माँ फूली न समाई। देवरानी के शुभागमन की तैयारियाँ वह चार महीने पहले ही से करने लगी।

जाड़ों के दिन थे। आस-पास के गाँवों मे ताऊन फैला हुआ था। देखते-देखते उस गाँव मे भी चूहे मरने लगे। चटपट तीन-चार मृत्युये भी हो गई। सारे गाँव मे तहलका मच गया। घर छोड़-छोड कर लोग भागने लगे। जिनका और कहीं अवलम्ब न था, वे बेचारे क्या करते? आखिर उन लोगों ने मिल कर लछिया के बाप से शरण की प्रार्थना की। लछिया का बाप शरण माँगने वालो को 'न' कैसे कर सकता था? भय-जैसी किसी वस्तु को उसने जीवन मे जाना नही था। गाँव उजड गया। टीले के चारों ओर झोंपडियाँ खडी हो गई। लछिया का बाप उन झोंपडियों की खोज-खबर एक राजा की तरह लेने लगा। उसे क्या मालूम था कि शरणार्थियों के साथ ताऊन के कीड़ो को उसने भी अपने घर मे निमन्त्रित कर लिया है?

अभी तीन-चार दिन ही बीते थे कि एक दिन शाम को लछिया के बाप का माथा और कनपटियाँ जलने लगीं। वह आराम करने के लिये लेट गया। थोडी ही देर मे उसकी दाहिनी काँख मे गिल्टी उभरने लगी। सारा शरीर ज्वर से जल उठा। भाई परेशान हो उठे। लछिया की माँ की आँखो के सामने लुत्तियाँ छिटकने लगीं। दौड़ धूप हुई। पास के गाँव से वैद्य बुलाने के लिये मॅझला भाई दौडा।

वैद्य ने कुछ भी उठा न रखा। लेकिन मृत्यु एक ऐसी बीमारी है, जिसकी

दवा दुनिया में किसी के पास नहीं है। लछिया का बाप, जिसने जीवन में कभी किसी से हार न मानी थी, आज मृत्यु के सामने स्वयं झुक गया। बिना किसी से कुछ कहे सुने आँखें मूँद लीं।

भाइयों की आँखों में लोगों ने पहिली बार आँसू देखे। लछिया की माँ पछाड़ खा गिर पड़ी। उसे क्या मालूम था कि अभी यह पहिली चोट है, दो चोटें उसे और सहनी हैं? तीन ही दिन के अन्दर शेष दोनों भाई भी ताऊन के शिकार हो गये। शायद वे बड़े भाई का विछोह न सह सके। लछिया की माँ पत्थर की मूर्त्ति बन गई। उसकी सारी अनुभव-शक्ति नष्ट हो गई। आँसू सूख गये। हृदय सुन्न हो गया। आँखें पथरा गईं। मस्तिष्क बेकार हो गया।

किले के तीन स्तम्भ भहरा कर गिर गये। पीपल की पत्तियाँ झड़ गईं। हरियाली लुट गई। पक्षी उड़ गये। गायें मुँह डाले मोटे-मोटे आँसू बहाती रहीं, किसी ने चारे पर मुँह तक न मारा। वातावरण में एक भयावनी शून्यता व्याप्त हो गई। हवा सिसकियाँ भरने लगी।

अभागी लछिया उस वक्त दो वर्ष की थी। उसे क्या मालूम था कि माँ को क्या हो गया है? वह निर्जीव-सी पड़ी-पड़ी शून्य में अपनी फैली आँखों से क्या देखती है? क्यों उसे चारों ओर से औरतें घेरे रहती हैं? क्यों उसे माँ के बदले एक दूसरी औरत दूध-भात खिलाती है? माँ के प्यार और दूध की उसे याद आती, तो 'माँ-माँ!' चिल्लाती हुई वह विक्षिप्त पड़ी माँ की छाती पर गिर पड़ती। झूले के अन्दर से उसका सूखा स्तन निकाल, मुँह से लगा लेती। जब दूध न आता, तो अपने नन्हे-नन्हें हाथ माँ के मुरझाये गालों पर रख पुकार उठती, "माँ! माँ!" जब माँ कुछ न बोलती, तो मुँह बाये, आँखों में आश्चर्य भर, बिलकुल पास से उसकी फैली हुई ज्योतिहीन आँखों और स्याह पड़े बन्द होठों को बारी-बारी से देखने लगती। जब कुछ समझ में न आता, तो माँ की गर्दन पर अपना मुँह रगड़ती, 'माँ-माँ!' चीखती, बिलख-बिलख कर रो पड़ती। तब औरतें उसकी माँ से कहती—"लछिया की माँ!

होश सँभाल ! अब लछिया का मुँह देख ! इसे चुप करा, नही तो बिलख-बिलख कर यह भी जान दे देगी ! जो हुआ, सो हुआ । अब उसी की फिक्र मे तू जान दे देगी, तो क्या हाल होगा लछिया का, क्या हाल होगा उन बेजबान गायो का, जो तेरे खूँटे पर बँधी आज चार दिन से बेचारा-पानी के सूख कर खखड हो रही हैं"

माया की जजीर मे जितनी कडियाँ हैं, उन सब मे मजबूत ममता की कडी है । सब कडियो के टूट जाने पर भी यह कडी जीवन को जकडे रहती है । लछिया की आँसू-भरी गोल-गोल आँखो ने माँ की सूखी आँखो मे झाँक-झाँक कर आँसू उमडा दिये, उसकी 'माँ-माँ' की करुणा मे डूबी हुई पुकारो ने उसके सुन्न हृदय से टकरा-टकरा कर सोये हुये वात्सल्य को जगा दिया । निरावलम्ब माँ को नन्ही लछिया ने सहारा दे उठा दिया । उसकी उँगली पकड उसने उसे जीवन की राह पर चलने को विवश किया । मृत्यु के भयावह अन्धकार के बीच लछिया जीवन की किरण बन चमक उठी । हाहाकार के निर्दय अट्टहासो को नन्ही लछिया की नन्ही मुस्कानो ने दबा दिया । लुटी हुई दुःखिनी माँ को लछिया मे अपने जीवन की अनमोल निधि दिखाई पडी । उसने उसे कस कर अपनी छाती से चिपका लिया ।

उपवनों की सुषमा लूट कर पतझड चला गया । उत्तरी हवा ने वसन्त-आगमन की सूचना दी । पीपल की नगी डालियो मे नव पल्लव फूट निकले । पक्षी नये तिनके ला नये नीडो की रचना मे जुट गये । नये पत्तो मे नवजीवन लहरा उठा । पक्षी कलरव कर उठे । हरियाली सगीतमय हो उठी । पीपल का पेड मस्त हो झूम उठा । गायें अपनी जिह्वा मे स्नेह-रस भर अपने बछडो को चाटने लगीं । लछिया के पैरो की पैजनियो की नन्ही-नन्ही मधुर ध्वनियाँ टीले के कोने-कोने मे गूँजने लगीं । माँ के टूटे दिल की उजडी बगिया मे अरमानो के पौदे उगने लगे ।

उस वक्त को गुजरे बारह साल हो गये । दो साल की अबोध लछिया

अब जवानी की ओर तेजी से कदम बढ़ा रही है। माँ उसे गुड़िया की तरह सजा कर उसकी उठती हुई जवानी को दुनिया की नजरों से छिपाने की कोशिश करती है, ताकि उसे देख कर कोई कह न उठे कि लछिया अब सयानी हो गयी, उसके ब्याह की फिक्र करो।

पिछले साल तक उसकी जाति का एक लड़का, बिशन, उसके यहाँ था। वही सब काम करता था। किन्तु न जाने क्यों उसे माँ ने हटा दिया।

लछिया ने अब घर का सब काम सँभाल लिया है। गायों को चारा-पानी वह देती है। सुबह-शाम दूध ले कर गाँव में जा बेच आती है। रसोई कर लेती है। माँ जो असमय में ही बूढ़ी हो गई है, उसे अब किसी प्रकार का कष्ट वह नहीं देना चाहती।

सिर पर मटका ले जब लछिया गाँव की ओर चलती है, तो माँ का हृदय न जाने कैसी आशंकाओं से काँप उठता है। किन्तु गाँव वाले जानते हैं कि लछिया किसकी बेटी है। उसका बाप नहीं रहा तो क्या, उसकी कार-गुजारियाँ तो हैं। किसी ने आज तक उसे छेड़ने की कोशिश न की। हाँ, लछिया कभी-कभी बिशन या उसी की तरह के अन्य युवकों से हँस-बोल लेती है। पर इसका मतलब गाँववाले कुछ और लगा ले, ऐसा सम्भव नहीं। उसके कुल की प्रतिष्ठा, जो वहाँ के लोगों के हृदय में स्थापित है, लछिया की तरफ किसी को दृष्टि नहीं उठाने देती।

२

कली पत्तों के झुरमुट में छिपी रह सकती है, लेकिन जब वह खिल कर फूल बन जाती है, तो वह पत्तों का अवगुण्ठन उठा इधर-उधर अपनी

मुस्कान बिखेरने लगती है। आने-जाने वालो की निगाह बरबस उधर खिच जाती है। अवसर पा, माली की निगाह बचा, कोई लपक कर उसे तोड लेने की कोशिश करता है।

लछिया की माँ अधिक दिनो तक दुनिया को भुलावे मे न रख सकी। लछिया का मामा, जो बहन को देखने आया था, लछिया को देख कर पूछ ही तो बैठा—"क्यो रे, लछिया की बातचीत कही चल रही है? देखते-ही-देखते कितनी सयानी हो गई बिटिया, और तुमने मुझ से कुछ कहलवाया तक नही!"

लछिया की माँ ने जैसे सजग हो कहा—"कहाँ? अभी तो पन्द्रह की भी नही हुई! फिर भी कई जगहो से बात तो उठी है, पर मुझे अभी तक कोई ऐसा दिखाई न दिया, जो लछिया के बाप की मर्यादा के अनुकूल हो, जो इस घर मे आ कर उनका स्थान ले सके।"

"लछिया के बाप-सा मर्द तो न पैदा हुआ, और न होगा। तू लाख कोशिश करे, वैसा पात्र मिलने का नहीं। वैसा मर्द कभी-ही-कभी दुनिया मे पैदा होता है। वह लाखों मे, करोडो मे एक थे, बहन!"—कह कर उसने एक आह भरी।

लछिया की माँ की गड्डो मे डूबी हुई आँखो मे 'उनकी' स्मृतियाँ करुणा का पानी बन तैरने लगी। उसने आर्द्र स्वर मे कहा—"काश, लछिया बेटा होती!" पलको पर अटकी बूँदे टप्-टप् चू पडी।

"जो बात हुई नही, उसको ले कर दु:ख करने से अब क्या बनेगा? भगवान लछिया को जीवित रखे! वह क्या किसी बेटे से कम है? ईश्वर ने चाहा, तो उसी से 'उनका' वश चलेगा। जब तक लछिया का ठिकाना कही नहीं लग जाता, मै यही रहूगा। और हाँ, अब लछिया को गाँव मे दूध बेचने जाने देना ठीक नही। मै यह सब स्वय कर लूँगा।"

"सो तो मै भी चाहती थी," आँसुओ को आँचल से पोछ कर लछिया

की माँ बोली—"यह तो मजबूरी करा रही थी न, वर्ना क्या लछिया को मै यह सब करने देती ? तुम लोगो के बुलाने पर भी मै मैके नही गई। तुम लोग नाराज हो गये। सालों तक कोई खोज-खबर न ली। पर मै 'उनका' स्थान कैसे छोड़ सकती थी ? लोग कहते, 'उनके' घर मे कोई दीया जलाने वाला भी न रहा ! भला यह मै कैसे सह सकती थी ?" उसकी आँखे फिर भर आई ।

"जाने दो, बहन, उन बातों को ! हमारा दिमाग उस समय खराब हो गया था। अब तुम किसी बात की चिन्ता न करो ! मै सब-कुछ सँभाल लूँगा !"

लछिया का मामा ही अब सब-कुछ करने लगा। माँ ने एक सन्तोष की साँस ली। पर लछिया को अब कुछ उदास-उदास-सा लगने लगा। सुबह-शाम गाँव मे जा वह बिशन और उसी की तरह के अन्य युवको से हँस-बोल लेती थी। जी बहल जाता था। कामों मे व्यस्तता के कारण उसे और कुछ सोचने का अवकाश ही नही मिलता था। पर अब घर मे बैठे-बैठे उसे सोचने के सिवा और कोई काम ही नही रह गया। कैद का अकेलापन उसे उन युवको की याद दिलाता। एक-एक के बारे मे वह बैठी-बैठी सोचती रहती। बिशन की याद के साथ न जाने कितने अतीत के चित्र उसकी आँखो के सामने बिखर जाते। वह उन स्मृति-चित्रो के सहारे उस जमाने को याद करती, जब वे छोटे थे। बिशन उसके यहाँ नौकर था। वह जब गायो को ले उन्हे चराने को निकलता, तो वह उसके साथ जाने को मचल पड़ती। माँ मना करती, तो वह रोने-धोने लगती। लाचार हो माँ उसे बिशन के साथ कर देती। मैदान मे गायो को चरने को छोड बिशन और वह घन्टों बाग मे खेला करते। कभी-कभी वह पेड़ो पर चढ़ अँबियाँ तोड लाता। चखने पर जो अँबिया मीठी निकलती, उसे वह लछिया को खिलाता, और जो खट्टी निकलती, उसे खुद खाता। गर्मी के दिनो मे वे दोपहरको कलेवा खाने घर

आते । रास्ते में लछिया के पाँव भुभुर मे जलने लगते । वह पैर पटक-पटक कर छटपटाने लगती । तब बिशन दौड कर उसे गोद मे उठा लेता, और हाथ से उसके कोमल तलवों को सहला-सहला कर ठण्डा करता ।

फिर उसे याद आता वह बाल-गोपालो का स्वयम्बर वाला खेल। उन दिनो गाँव मे एक रामायणी पण्डित आये थे । वह रात को रामलीला करते थे । सारा गाँव रामलीला देखने को टूट पड़ता था । सीता-स्वयम्बर की लीला वाली रात के दूसरे दिन जब बाग मे बाल-गोपाल इकट्ठे हुये, तो उन्होंने स्वयम्बर का खेल खेलने का निश्चय किया । सब से पहले सीता का चुनाव हुआ । जो चार-पॉच लडकियाँ वहाँ उपस्थित थीं, उनमे लछिया सबसे सुन्दर और गुडिया की तरह सजी हुई थी । इसलिये एकमत हो कर सब ने उसे सीता के आसन पर बैठा दिया । अब राम के चुनाव का प्रश्न आया । कमजोर लडके तो चुप रहे, पर जो अपने को मजबूत समझते थे, वे राम बनने के लिये झगडा करने लगे । अन्त मे निश्चय हुआ कि प्रतिद्वन्दियो मे कुश्ती हो । जो सब को पटक कर विजयी होगा, उसे ही राम बनाया जायगा । कुश्ती छिड गई । एक-एक जोड़ अखाड़े मे उतरने लगा । जो हार जाता, वह एक तरफ बैठ जाता । और जो जीतता, उसका दूसरे से जोड छूटता । एक-एक कर बिशन ने सब को हरा दिया । फिर आम के पत्ते तोड कर दो मुकुट बनाये गये । एक लछिया के सिर पर बाँधा गया, दूसरा बिशन के सिर पर । कनैर के फूल तोड़ कर, एक लम्बा हार बना कर, लछिया को एक पेड के नीचे खडा कर उसके हाथो मे लटका दिया गया । उसके सामने ऊँची जमीन पर एक कपडा बिछा कर उस पर हरी कैनी का धनुष रख दिया गया । बिशन के साथ एक लडके को लक्ष्मण और दूसरे को विश्वामित्र बना कर खडा कर दिया गया । एक राजा जनक बन धनुष के पास खडा हो गया । बाकी ग्वाल-बाल राजा बन धनुष के चारो ओर अकड़े हुए बैठ गये । लड़कियाँ सीता की सखियाँ बन लछिया के इर्द गिर्द खडी हो गईं । तब राजा जनक

ने हाथ से धनुष की ओर इशारा कर घोषणा की—"जो राजा इस धनुष को तोड़ेगा, उसी से मैं अपनी पुत्री, सीता का विवाह करूँगा!" एक-एक कर सब राजा देह ऐंठते हुये, मूँछों पर हाथ फेरते हुए उठे, और धनुष पर जोर आजमा कर मुँह लटकाये हुये अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये। तब राजा जनक ने रोष कर कहा—"अगर मुझे मालूम होता कि धरती पर अब कोई वीर नही रह गया, तो ऐसी प्रतिज्ञा कभी न करता! हाय, अब मेरी राजकुमारी जीवन भर कुँवारी ही रह जायगी!" यह सुन कर लक्ष्मण ने क्रोध मे आकर छाती ठोकते हुये कहा—"राजा जनक! तुम्हे मालूम नहीं कि रघुकुल वश के दो राजकुमार यहाँ खड़े हैं? उनके रहते तुमने ऐसी बात मुँह से कैसे निकाली?" तब विश्वामित्र ने राम को आज्ञा देते हुए कहा—"जाओ, राजकुमार! धनुष तोड़ कर राजा की शका दूर करो!" राम ने मुस्कराते हुए धनुष को उठा कर दो टूक कर दिया। राजाओं ने हर्ष-ध्वनि की। सीता ने मुस्कराते हुए बढ कर राम के गले मे जयमाल पहना दिया। सब ने मिल कर राम की-जय-ध्वनि की।

उस खेल की बात ले कर बिशन लछिया को चिढाता, तो वह चिढ कर उसे मार देती, अब उन बातो को सोच कर उसे कितनी शर्म लगती है! काश, वह खेल सच हो जाता!

जिस दिन माँ ने बिशन को नौकरी से अलग किया था, वह पीपल की आड मे बैठ कर घन्टो रोई थी। उसका बचपन का साथी उस दिन बिछुड़ गया था। फिर भी उसे सन्तोष था कि कम-से-कम सुबह-शाम तो वह बिशन से हँस-बोल लेती है। किन्तु अब! अब तो वह सहारा भी टूट गया। कैसे काटे वह उठती जवानी के दिन?

कभी-कभी सुबह जब उसका मामा दूध ले कर गाँव चला जाता और माँ घर मे रहती, तो वह टीले के किनारे खड़ी हो गाँव से आने वाली पग-डडी पर नजर गड़ाये देर तक ताकती रहती। सोचती, बिशन अपने ढोरों

को लिये शायद इधर से निकले। तब वह उसे बुला कर उससे दो मीठी-मीठी बातें करेगी। पर बिशन उसे कभी दिखाई न देता। वह भरी आँखें लिये पीपल के नीचे आ बैठती। सोचती, क्या बिशन को उसकी याद नहीं आती? तब पलकों में अटके आँसू झर-झर बरस पड़ते।

आजाद फिजा में डालों पर फुदकने वाली मैना पिंजड़े में बन्द हो घुटने-सी लगी। साथी की यादें कसक बन उसका रक्त-मांस सुखाने लगीं। वह पीली पड़ गई। आँखों में उदासी की परछाइयाँ तैरने लगीं।

माँ को चिन्ता हुई। पर उसकी प्रतिज्ञा जनक की प्रतिज्ञा से कम न थी। मामा ने कितने युवकों की बात चलाई। पर माँ को उनमें से कोई ऐसा योग्य दिखाई न दिया, जो लछिया के बाप का स्थान ले सके, जो वंश की मर्यादा को आगे बढ़ा सके। आखिर मामा ने एक तरकीब सोची। उसने लछिया की माँ से कहा—"सालों से लछिया के बाप के अखाड़े की पूजा नहीं हुई। क्यों न इस साल अखाड़े की पूजा हो, और उसका निमन्त्रण पास और दूर के अखाड़ों को भेजा जाय? उनके नाम पर जवार के सब सजातीय युवक पधारेंगे। उनमें जो सब से बाजी मार ले जाय, उसी से लछिया का विवाह कर दिया जाय।"

माँ को उसकी सूझ पसन्द आई। उसने कहा—"हाँ, यह तो ठीक है। पर किसी को मालूम नहीं होना चाहिये कि पूजा का उद्देश्य लछिया के लिये वर का चुनाव करना है।"

"इसकी किसी को कानोकान खबर न होने पायेगी। हाँ, तो कल ही क्यों न 'सुपारी' भिजवा दी जाय?"

"हाँ, दो महीने के अन्दर की तारीख पूजा के लिये निश्चित करके निमन्त्रण भेजवा दो।"

पूजा की तैयारियाँ शुरू हो गईं। गाँव-गाँव में सुपारी भेजवा दी गई। लोगों ने समझा, विधवा ने अपने पति का नाम चलाने को अखाड़े की पूजा

फिर से चालू की है।

पूजा के दिन नगाड़ो की गड़गड़ाहट से आकाश फटने लगा। अखाड़े के चारो कोनों पर बजरङ्ग बली की ध्वजाये फहराने लगी। आम के पल्लवों और कनैर के फूलों के तोरण और बन्दनवार से आखाड़ा खूब सजा दिया गया। हजारों की भीड़ मे नामवर युवक पहलवानों का जोड़ छूटने लगा। महावीर की जय-ध्वनि से आसमान गूँजने लगा।

माँ घर मे लछिया के बाल सँवार रही थी।

शाम को पूजा समाप्त हुई। विजेता युवक का गला हारों से भर गया। सब से बिदा ले मामा उस युवक को लिये घर आये। पीपल के नीचे चौकी पर उसे आदर से बिठा लछिया की माँ को शुभ समाचार सुनाने वह घर के अन्दर घुसे।

माँ खुशी मे बावली-सी हो दौड़ी अपने भावी जामाता को देखने। द्वार से ही नजर पड़ी। चौकी पर हारों से लदा हुआ, होंठो मे ही मन्द-मन्द मुस्कराता बैठा था बिशन। माँ सन्नाटे मे आ गई। सारी खुशी धुआँ बन आँखो के सामने से उड गई। वह हाथों से सिर थामे वहीं बैठ गई।

अन्दर उत्सुक लछिया मामा से पूछ रही थी—"क्यों, मामा, पूजा मे किसने बाजी मारी?"

मामा ने आँखो से खुशी छलकाते कहा—"बिशन ने जवार के सारे युवको को हरा दिया। वह बाहर बैठा है। देखेगी तू भी उसे?"

"बिशन!" होंठों मे ही कह उठी लछिया। उसकी आँखे हर्ष से चमक उठी। वह उड़ते हुये कदम रखती दौडी। द्वार पर पहुँच उसने अपनी विह्वल आँखे बिशन पर बिछा दी। बिशन ने अपनी मुस्कराती आँखे ऊपर उठाई। आँखे चार हुई कि माँ की भर्राई हुई आवाज आई—"लछिया, चल अन्दर, बेटी!" लछिया ने मुड़ कर देखा, माँ उसकी पीठ पर हाथ रखे खडी थी।

३

पूर्वी क्षितिज से ऊपर उठ पूर्णिमा का चाँद मुस्करा उठा। रहस्यमयी चाँदनी चारों दिशाओं मे चाँदी के तारों का जाल बुनने लगी। सन्ध्या का धुँधला वातावरण रुपहला हो चमक उठा।

टीले के नीचे सरोवर के किनारे एक युवक अपनी दुलहिन-सी सजी ऊँची घोडी से उतरा। लगाम पकड घोडी को पानी की ओर खींचा। घोड़ी पहले जरा ठिठकी, फिर मुँह नीचे कर पानी की ओर बढ़ गई। युवक लगाम पकड़े ही तीर पर जूता निकाल कर बैठ गया। घोड़ी पानी पीने लगी। युवक लगाम छोड़, हाथ-मुँह धो, उठ कर जीन पर लटके झोले मे गमछा खींच हाथ-मुँह का पानी पोंछने लगा। सहसा उसकी दृष्टि सामने ही, थोड़ी दूर पर किनारे बैठी एक तरुणी पर पड गयी। वह अकचका-सा गया। उसने एक बार आँखें ऊपर उठा आकाश के मुस्कराते चाँद को देखा, फिर तरुणी पर नजर डाली। उसे लगा, जैसे ज्योत्सना की रानी सरोवर के निर्मल जल में स्नान कर किनारे बैठी हो। युवक की बड़ी-बडी आँखों मे एक रहस्यमयी मुस्कान चमक उठी। उसने घोड़ी के पुट्ठे पर एक जोर का हाथ मारा। चोट की आवाज निस्तब्ध वातावरण में गूँज गई। किनारे के पेड पर सोई चिडियों मे कोलाहल मच गया।

किसी ख्याल मे डूबी हुई तरुणी अकचका कर झटके से उठ खड़ी हुई। उसकी कमर मे एक आकर्षक झुकाव पैदा हो कर रह गया। उसने अपनी लम्बी-लम्बी, सपनों के भार से बोझिल-सी पलकें उठा कर सामने देखा, एक छः फीट का बलिष्ठ युवक सामने खड़ा उसी की ओर घूर रहा है। वह तनिक सहम-सी गई।

युवक घोडी का लगाम पकड़े हुये तरुणी के पास आ खड़ा हो गया। गुस्से के मारे तरुणी के पतले होंठ फड़फड़ाने लगे, जैसे किसी ने उन पर मिर्चें

की बुकनी छिड़क दी हो। उसने निचला होठ दाँतों से दबा कर आग उगलती हुई अपनी बड़ी-बड़ी, काली आँखों को युवक के चेहरे पर उठाया। युवक के होंठो पर एक मन्द मुस्कान थिरक रही थी। मुरैठे के नीचे उसकी चौड़ी पेशानी और कनपटियो की उभरी रगों पर चाँद की किरणे चमक रही थीं। काली घनी मूछे दोनों ओर बिच्छू के डंक-सी उठी हुई थी। उसके असाधारण चौड़े कन्धो और सन्दूक-सी तनी हुई छाती पर दृष्टि झुकते-झुकते तरुणी का क्रोध न जाने कहाँ चला गया। वह आँखे नीचे कर पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगी। उसका चेहरा सुर्ख हो उठा। युवक लज्जावरण मे ढँकी उस रूप-राशि को एकटक देखता ही रह गया। उसे लगा, जैसे शाख से झुकी हुई एक गुलाब की अधखिली कली चाँदनी मे अपनी अस्फुट मुस्कान बिखेर रही हो। उसने धीरे से पूछा—"तू कौन है?"

तरुणी ने धीरे से बायाँ हाथ उठा टीले की ओर उँगली से इशारा कर दिया। गोरी कलाई की काली-काली चूड़ियाँ झन से बज कर एकजा हो गईं।

युवक ने टीले की ओर नजर उठाई। उसकी आँखो की चमक एकदम मद्धिम पड़ गई। वह कुछ अस्थिर-सा हो उठा, जैसे अनजाने मे उससे कोई बड़ी गलती हो गई हो।

"तू कौन है?" तरुणी ने तनिक सहमते हुये पूछा।

"मै एक मुसाफिर हू," युवक ने सँभल कर कहा—"क्या तू उन तीन भाइयो मे से किसी की लड़की है?"

"हाँ! क्या तू उनको जानता है?" आश्चर्य से आँखे चमकाते हुये, तरुणी ने पूछा।

"उन्हे कौन नही जानता? उनकी मौत से आकाश के तीन सब से चमकीले तारे आदमियो की आँखो से ओझल हो गये। बचपन में मेरे बाबू उनकी जवाँमर्दी की कहानियाँ मुझे सुनाया करते थे।"—कह कर युवक ने अपना सिर एक ओर फेर लिया। उसकी आँखो मे आँसू छलछला आये।

"क्यों, क्या हो गया तुझे ?" तरुणी ने आँखे सिकोड़ते हुये पूछा।

"कुछ नहीं ! बचपन मे उन्हे देखने की मुझे बड़ी इच्छा थी। वह इच्छा पूरी न हो सकी। क्या तू मुझे अपने घर ले चलेगी ? तेरा घर बहादुर युवकों के लिये एक तीर्थ-स्थान से भी बढ कर है !"

"हाँ-हाँ !" अपनी लम्बी-लम्बी सीप-सी सुन्दर पलके ऊपर उठाते हुये तरुणी बोली।

"तेरा नाम क्या है ?" घोड़े की लगाम आगे को खींचते हुये युवक बोला।

"लछिया," आगे बढी हुई तरुणी बोली।

टीले पर चढ कर लछिया ने युवक के हाथ से लगाम ले पीपल की जड़ मे बाँध दी। फिर युवक को चौकी पर बैठने का इशारा कर, वह घर मे माँ को सूचना देने घुस गई।

युवक चौकी पर बैठ गया। चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणे, मन्द-मन्द हवा मे थिरकते पीपल के पत्तों से छन-छन कर उसके ऊपर चमक रही थी। पास ही गाये बैठी आँखे बन्द किये पागुर कर रही थी। दूर के किसी कुएँ से पानी गिरने की हर-हर आवाज रह-रह कर आ रही थी।

थोडी देर मे माँ बाहर आई। युवक ने सिर का मुरैठा उतार उसके चरणो पर रख दिया। माँ ने उसकी चार-चार अंगुल चौडी कलाइयों को हाथ से पकड उसे उठाते हुये कहा—"खुश रह, बेटा ! तू कौन है ? क्या चाहता है ?"

मै मुसाफिर हू, माँ ! रात भर ठहरूँगा।"—युवक ने बडी नम्रता से कहा।

"अच्छा, बेटा ! हमसे तेरी जो सेवा"

बीच ही मे युवक बोल पडा—"क्या कहती है, माँ ? तेरे घर का जूठन भी मेरे लिये देवता के प्रसाद-तुल्य है !"

"अच्छा-अच्छा ! तू आराम से बैठ। मै अभी लछिया को भेजती हूं।

और कोई तो है नही। लछिया का एक मामा है, वह भी आज शाम से बुखार मे पड़ा है।"—कह कर माँ घर की ओर मुड़ी।

"माँ मेरे लिये कोई कष्ट न करना ! जो भी रूखा-सूखा मौजूद हो, भेज देना। मै भी अहीर ही हूं।"

"ऐ !" अकचका कर माँ मुड़ कर युवक की ओर देखने लगी। उसकी साँचे मे ढली हुई शरीर-यष्ठि को देख कर माँ की आँखे चमक उठी, जैसे सहसा कोई बहुत दिनों की इच्छित वस्तु मिल गई हो। बढ़ कर उसके कन्धो पर हाथ रख उसे चौकी पर बैठा दिया।

लछिया गगरे मे पानी और लोटे मे शरबत लिये आ पहुँची। माँ एक रहस्य-भरी दृष्टि युवक पर डाल कर, घर के अन्दर होठो मे ही कुछ बुदबुदाती चली गई।

युवक कपड़ा उतारने लगा। उसकी कमर मे बँधी कटार की मुठिया चाँदनी मे चमक उठी।

लछिया ने उसे देखा, तो बच्चे की तरह आँखे नचाते पूछ बैठी—"यह क्या है?"

"यह...यह कुछ नही ! यो ही पास मे रखता हूं। शायद कभी जरूरत आ पड़े।"—कह कर युवक ने बलपूर्वक कटार को जल्दी से कमर से खोल, मुरैठे के नीचे छिपा कर रख दिया। फिर गगरे की ओर बढ गया।

लछिया आगे बढ, मुरैठे को हटा, कटार हाथ मे ले, उलट-पलट कर देखने के बाद उसका कब्जा खोलने का प्रयत्न करने लगी।

"लाओ, मै खोल दूँ।" गगरे का पानी पैरो पर उँडेलते हुये युवक बोला।

लछिया जोर से उसकी मुठिया खींचती युवक की ओर बढ गई। युवक ने कटार हाथ मे ले ली। पेच दबा कर म्यान से कटार खींची, तो धार की चमक से लछिया की आँखे एक बार झप गईं। सहसा उसके मुँह से निकल गया—"कैसी झलझल कर रही है! इसे मुझे देगा?"

"क्यो ?" मुस्कराते हुये युवक ने पूछा—" तू इसे ले कर क्या करेगी ?"

युवक के हाथ से कटार ले, उसकी धार पर उँगली फेरते हुये लछिया बोली—"शायद मुझे भी कभी जरूरत आ पड़े !"

युवक ठट्ठा मार कर जोर से हँस पड़ा। पीपल की डाल-डाल काँप उठी। चिड़ियो के शान्त ससार मे खलबली मच गई। गाये जुगाली बन्द कर अपनी उनींदी आँखे खोल कर, चिहा-चिहा कर युवक की ओर देखने लगी। युवक की कनपटियो की उभरी रगे खून की तरह लाल हो चमक उठी। उसने हँसी रोक कर कहा—"तुझे घर मे बैठे-बैठे इसकी क्या जरूरत पड़ेगी ?"

"क्यो ? आज ही सरोवर के किनारे तेरे बदले किसी डाकू से मेरी मुठ-भेड हो जाती, तो मै क्या करती ?"

युवक सहसा 'डाकू' शब्द सुन कर घबरा-सा गया। बगले झाँकते हुये वह सँभल कर बोला—"अच्छा, मै कल तेरे लिये भी एक कटार ला दूँगा। इसे तो मेरे ही पास रहने दे। मुझे बड़ी दूर जगलो के उस पार जाना है।" —कह कर उसने शरबत गट-गट गले के नीचे उतार भरा लोटा खाली कर दिया।

"तो तू कल भी आयेगा ?" लछिया ने खुश हो पूछा।

"हाँ-हाँ, मै कल भी आऊँगा ! और अगर तेरी माँ बुरा न मानेगी, तो मै रोज रात को तुझे देखने आ जाया करूँगा।"—कह कर युवक ने एक तीव्र दृष्टि लछिया पर गडा दी।

"सच ? तू रोज आयेगा ? तब तो बड़ा अच्छा रहेगा ! यहाँ अकेले मेरी तबीयत बहुत घबराती है। हम दोनों खूब बाते किया करे गे। है न ?"—आँखों से खुशी छलकाती लछिया बोल पड़ी।

"हाँ-हाँ ! पर तेरी माँ चाहे, तब न ?"

"मेरी माँ बड़ी अच्छी है ! अच्छा, तू अब जरा बैठ। मै तेरे खाने के लिये लाऊँ।"—रुपहले स्वर मे कह कर लछिया झटके से मुडी, तो सिर से

उसका आँचल खिसक गया। युवक की आँखे उसकी पीठ पर बल खाती लम्बी वेणी, और कमर के नीचे लटकते उसके रङ्ग-बिरङ्गे फुँदनों पर अटक गई।

न जाने कितने दिनों के बाद लछिया को एक सजीला युवक बातें करने को मिला था। खाना लेकर आई, तो युवक के सामने बैठ मैना की तरह देर तक चहकती रही। न जाने कहाँ-कहाँ की, कैसी-कैसी बातें कहते-सुनते रहे दोनों।

पौ फटते ही युवक जाने को तैयार हो, घोड़ी पर जीन कसने लगा। माँ उसके अनजाने ही खड़ी-खड़ी उसे आँखें गडा कर देख रही थी। लगाम घोड़ी के मुँह मे लगा, युवक द्वार की ओर मुड़ कर विदा लेने के लिये लछिया को पुकारने ही वाला था कि माँ पर उसकी दृष्टि पड गई। माँ ने उसके पास आ कर कहा—"क्यों, बेटे, जा रहा है ?"

"हाँ, माँ ! आशीर्वाद भाग्य मे होगा, तो फिर कभी दर्शन को चला आऊँगा !"—युवक ने श्रद्धा से नत हो कहा।

माँ का हृदय गद्‌गद हो गया। उसकी आँखों मे खुशी के आँसू छलक आये। वह धीरे से बोली—"बेटा, तूने मुझे यह नही बताया कि तू कौन है !"

"माँ !" सिर झुका युवक बोला—"मै अपना असली नाम तो किसी से नहीं बताता, पर तुझ से न जाने क्यों मुझे जरा भी भय नही लगता। मालूम होता है कि मेरी मरी माँ आज मेरे सामने आकर खड़ी हो गई है। तुझसे मै कुछ न छिपाऊँगा। मेरा नाम छगा है !"—कह कर युवक ने सिर झुका लिया।

"छगा ! छंगा डाकू !" माँ की धँसी आँखो मे एक आश्चर्यमिश्रित हर्ष चमक गया। खुशी से पागल हो वह उसकी लोहे की सलाखों-सी हाथ की अँगुलियाँ पकड़ कर खीचते हुये बोली—"बेटा, तूने सिर झुकाने का कोई काम नहीं किया है ! तेरी बहादुरी की धाक आज पाँच जिलों में जमी हुई है। मैं तो तुझे कितने दिनों से देखना चाहती थी। आज मेरे दिल की चाह

पूरी हुई। तू धुँधलके में ही निकल जा! भगवान् तेरी रक्षा करे! हाँ, शाम को फिर आना! आयेगा न?" उसके चट्टान-से उन्नत वक्षस्थल को हाथ से ठोंकती माँ उसका मुँह ताकने लगी।

"आऊँगा, माँ!" कह कर छुगा माँ के चरणों पर झुक गया। माँ ने उसके कन्धों को हाथों से थपथपा दिया।

छुगा घोड़ी की लगाम खींच आगे बढ़ा। माँ मुस्कराती आँखों से उसे तब तक देखती रही, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया। उसे आज लगा, जैसे उसके हृदय पर बरसों से पड़ा हुआ बोझ सहसा हट गया हो।

४

छुगा उस इलाके का नामी डाकू था। उसकी शोहरत दूर-दूर के जिलों तक थी। उसका नाम सुन कर बड़े-बड़े अँग्रेज अफसर तक काँपते थे। माँयें उसका नाम ले रोते हुये बच्चों को चुप कराती थी। उस इलाके का कोई ऐसा बड़ा जमींदार या धनाढ्य व्यक्ति न बचा था, जिसके धन पर उसने हाथ साफ न किया हो। उसके डर से धनीमानी व्यक्तियों के यहाँ नैपाली चौकीदारों और सशस्त्र पुलिस का चौबीसों घंटे पहरा रहता था। फिर भी छुगा डाका डालता था, और साफ बच कर निकल जाता था। उसका नाम लोगों की जबान पर था, पर किसी ने उसे आज तक देखा नहीं था।

सत्ताईस वर्ष का छः फीट लम्बा युवक छुंगा जब लंगोट पहन नंगे बदन खड़ा होता, तो लगता जैसे किसी यूनानी कलाकार की गढ़ी हुई एक पहलवान की ऊँची मूर्ति खड़ी हो। उसका उन्नत माथा, बाँकी मूछें, चेहरे, बाँहों और पिंडलियों की उभरी हुई मोटी-मोटी रगें, विशाल छाती, चौड़े कंधे, पेड़ के तने-सी सुडौल रानें और पत्थर-सी सख्त मासल भुजाएँ इस बात की द्योतक

का नाम जयदयाल है, जो सरजू पार के अपनी ही जाति के किसी बड़े जमींदार का पुत्र है।

भोली लछिया सूरज डूबते ही सरोवर के किनारे पहुँच युवक के आने की प्रतीक्षा करती। उसके भोले दिल को सही तरीके पर छेड़ने की किसी ने अब तक कोशिश न की थी। या कि किसी युवक मे इतना साहस ही न था कि टीलेवाली युवती को तिरछी आँखे कर देखता, इशारों-इशारो मे ही उससे यौवन और प्रेम की कुछ रहस्य-भरी बाते करता। छुगा और लछिया सरोवर के किनारे बैठे घटो मीठी-मीठी बाते किया करते। लछिया को छुगा के साथ बैठने मे बड़ा मजा आता। वह जब तक छुगा के पास रहती बुलबुल की तरह चहकती रहती। छुगा मुस्कराता हुआ उसकी प्यारी-प्यारी बाते सुना करता। किन्तु अभी तक उसने अपने हृदय का प्रेम लछिया पर प्रगट नही किया था। समझ मे ही नहीं आता था कि वह किस तरह अपने दिल की बात उससे कहे। वह लछिया से अपने पास बैठने को कहता। भोली लछिया बिना किसी झिझक के बैठ जाती। पर छुगा ने उसे कभी किसी प्रकार स्पर्श करने का साहस नही किया।

लछिया की माँ ने उन्हे आपस मे घुलने-मिलने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। लछिया के मामा को भी इशारतन उसने बता दिया कि वह युवक लछिया का भावी पति है। वह उनके मिलने-जुलने मे किसी प्रकार की बाधा न डाले, और किसी से भी युवक के बारे मे कुछ न कहे।

छङ्गा के दिल मे अपने डाकू होने की कलक सदा बनी रहती। वह हमेशा इसी चिन्ता मे रहता कि किस प्रकार वह देवी-सी भोली लछिया के योग्य बन सके।

देखते-देखते छ. महीने बीत गये। इलाके के लोगो को आश्चर्य हुआ कि उन छ. महीनो मे छङ्गा ने कही डाका न डाला। यह बिलकुल असाधारण बात थी। उन्हे क्या मालूम था कि डाकू छङ्गा, जो एक शेर की तरह

बेधड़क इलाके मे शिकार खेला करता था, जिस पर हजारों निशाने साधे जा चुके थे, पर जो अब तक बेदाग बचा था, वही एक युवती ने नयन-वाणों का शिकार हो, उसके कदमों में घायल-सा छटपटा रहा है।

आखिर एक रात लछिया और उसके मामा के सो जाने पर माँ छङ्गा के पास आई। छङ्गा पीपल के नीचे चौकी पर लेटा हुआ अपने भावी जीवन के सपनो के जाल मे उलझा हुआ था। उसे नीद नही आ रही थी। माँ ने उसे जगा कर अपने दिल की बात उससे कह दी। छङ्गा प्रसन्नता से विह्वल हो माँ के चरणों पर झुक गया। माँ ने उसे उठा कर छाती से लगा लिया। उसी दिन शादी की बात पक्की हो गई। छङ्गा ने माँ से प्रार्थना की कि वह लछिया को न बताये कि उसकी शादी उसी से होने जा रही है। ऐसा करके वह सोचता कि लछिया अचानक अपने हृदय के देवता को पति के रूप मे पा कर फूली न समायेगी। उसे पूरा विश्वास हो गया था कि लछिया भी उससे उतना ही प्रेम करती है, जितना वह लछिया से करता है।

दूसरी शाम को जब छङ्गा सरोवर के किनारे अपनी घोड़ी से उतरा, तो वह बेहद खुश था। पर लछिया चिंतित-सी छाती पर मुँह लटकाये किनारे बैठी थी। उसने सदा की तरह आज मुस्करा कर उसका स्वागत नही किया। छङ्गा का हृदय धक-से कर गया। वह लपक कर लछिया के पास पहुँचा, और कुछ घबराया-सा बोला—"लछिया!"

लछिया ने कुछ जवाब नही दिया। उसके चेहरे पर चिन्ता की छाया और भी गहरी हो गई।

"लछिया!" छङ्गा और भी घबरा कर जोर से बोल पड़ा।

लछिया ने झटके से सिर उठा कर उसकी ओर देखा, जैसे वह किसी सपने से चिहुँक पड़ी हो। सामने छङ्गा को देख कर उसकी पलकें काँप गईं। होठ फड़फड़ा उठे। उसने झटके से अपना सिर मोड़ कर आँखें झुका ली।

छङ्गा की आँखें सिकुड़ गईं। वह उसके पास ही बैठ कर बोला—

"लछिया, क्या हो गया आज तुझे ?" कह कर वह आँखे फैला लछिया की ओर देखने लगा।

लछिया की आँखो से टप्-टप् आँसू की बूँदे चूने लगी। छज्ञा हक्का बक्का-सा उसकी ओर देखता रहा। क्या हो गया अचानक इस लछिया को ? उसकी चचल आँखे, जो हिरनी की आँखो की तरह हमेशा खुशी से चमकती रहती थी, उनमे आज आँसू कैसे भर आये ? छज्ञा का हृदय चचल हो उठा। अनजान मे ही उसने आज पहिली बार उसके कन्धे पर हाथ रख कर भर्राये स्वर से कहा—"लछिया !"

लछिया ने आज पहिली बार अपना सिर छज्ञा के चौड़े सीने पर टेक दिया, और फफक कर रोती हुई बोली—"आज मै बहुत परेशान हू !"

"क्यो, लछिया ? क्या हुआ ? मुझे बतला न !"—बेहद परेशान होता छज्ञा बोला।

"माँ से कुछ कहते हुये डर लगता है। तू बडा अच्छा है। आज दिन भर शाम होने की राह देखती रही कि तू आयेगा, तो तुझी से सब बाते कहूगी।"—सिसकती हुई लछिया बोली।

"तो कह न !" छज्ञा उत्सुक हो उठा।

"मै बहुत पहले ही तुझसे कहना चाहती थी, पर" . भीगे हुये निचले होठो को दाँतो-तले दबाती लछिया चुप हो गई।

"पर क्या ?" और उत्सुक हो उठा छज्ञा।

"पर मुझे शर्म आती थी !" पलके झुका कर लछिया बोली।

छज्ञा की जान मे जान आई। उसका हृदय एक-ब-एक उछल-सा पड़ा। वह खुशी दबाये ही बोला—"लछिया मुझसे काहे का शर्म ? कह न !"

'तुझे मालूम है कि माँ मेरी शादी करने जा रही हैं ?"

शादी !" कहते ही छज्ञा की आँखे चमक उठी। उसे जैसे अब मालूम हो गया कि लछिया क्यों इतनी परेशान है। उसने ही तो माँ से कह

दिया था कि लछिया को वह न बताये कि उसकी शादी किस से होने जा रही है। ऐसा करके नाहक उसने लछिया को इतना परेशान किया, और खुद भी इतना परेशान हुआ।

"हाँ, जिसे मैंने आज तक नहीं देखा, उससे भला !"...कहते-कहते लछिया जैसे फिर रो पड़ी।

"नहीं-नहीं ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगा ! तू जिससे चाहेगी, माँ से कह कर मैं उसी से तेरा ब्याह करवा दूँगा !"—मूँछो में ही मुस्कराता छुङ्गा बोला।

"सच ?" आँखें चमका कर लछिया बोल पड़ी।

"हाँ-हाँ !" मुस्कराते हुए छुङ्गा ने कहा।

"ओह ! तुम कितने अच्छे हो !" कह कर लछिया छुङ्गा से नादान बच्ची की तरह लिपट गई। छुङ्गा की आँखों में खुशी के आँसू छलक पड़े। उसने लछिया की चोटी हाथ में ले स्नेह से कहा—"मगर मैं जानूँ भी तो कि तू किससे ब्याह करना चाहती है ?"

"मैं मैं. " शरमा कर लछिया चुप हो गई।

"हाँ, हाँ, कह न ! "—होंठो में ही मुस्करा कर छुङ्गा ने कहा।

"उसका नाम बि . बिशन है !" कह कर लछिया झटके से उठ कर शरमाई हुई सिर झुका कर खड़ी गई।

छुङ्गा को काटो तो खून नहीं !

"क्यों, माँ से कहोगे न ?" शरमाई हुई ही आँखें तिरछी कर लछिया ने कहा।

"हाँ ! तू घर जा !" सिर झुकाये ही छुङ्गा ने किसी तरह ये शब्द कहे।

"तू नहीं चलेगा ?" मचल कर लछिया ने पूछा।

छुंगा का चेहरा तमतमा गया। आँखों में खून-सा उतर आया। नाक का बाँसा काँप उठा। मूँछे झुक कर रह गईं। उसने सँभल कर कहा—"नहीं, तू जा ! सब ठीक हो जायगा !" ..

५

अँधेरी रात भीग चुकी थी। सारे गाँव मे एक खौफनाक सन्नाटा छाया हुआ था। आकाश मे तारे ऊँघ-से रहे थे। हवा सी-सी कर बह रही थी। कभी-कभी किसी कुत्ते के रोने की मनहूस आवाज सन्नाटे को और भी भयकर बना देती थी।

बिशन अपने बूढे बाप की मृत्यु-शय्या के सिरहाने शून्य आँखे लिये खोया-सा बैठा था। आले में दीये की लौ जलते-जलते जैसे थक कर अब लडखडा-सी रही थी। कुत्ते के रोने की आवाज सुन कर बिशन चौक-सा पडा। मृत्यु की काली छाया उसकी आँखो के सामने डोल-सी गई। वह आँखों को हाथ से ढॅक कर फफक पडा।

'खन्-खनन्, खन्-खनन्' उसके दरवाजे की सिकडी बज उठी। वह चिहुँक पडा। धीरे से उठ कर उसने दरवाजा खोला। एक काली, लम्बी छाया उसकी आँखो के सामने खडी थी। उसने कहाँ—"तू कौन है ?"

"मै मैं मुझे तू नही पहिचानेगा ! बिशन का बाप यहीं रहता है ?" छाया ने धीरे से कहा।

"हाँ, यही उसका घर है, पर अब तो वह यह घर हमेशा के लिये छोड़ रहा है !"—कह कर बिशन रो पडा।

छाया ने अपना दाहिना हाथ बिशन के सिर पर रख दिया। बिशन अकचका गया। इतना भारी हाथ !

"घबरा मत ! मै तेरे बाप से मिलना चाहता हूं। मुझे अन्दर ले चल !"

"मगर अब तो वह बोलता तक नहीं। बस आखिरी साँसे गिन रहा है।"—लडखडाती हुई आवाज मे बिशन ने कहा।

"तब तो तू मुझे जल्दी उसके पास ले चल !" अन्दर होते हुये छाया ने कहा।

छाया बिशन के बाप के पास जा कर, फिर उसका सुन्न हाथ पड़क कर बोली—"चाचा ! चाचा !"

बिशन ने उसके मुँह पर हाथ रख कहा—"इतने जोर से मत बोल ! अब इसमें सुनने-बोलने की शक्ति नही है। तुझे इससे क्या काम था ?"

"मुझे अफसोस है कि मै वक्त पर न पहुँच सका। चाचा ने आज दस वर्ष हुये मेरे यहाँ एक चीज धरोहर रखी थी। मैने कल ही इसकी बीमारी का हाल सुना था। कल न आ सका। आज देर हो गई। अब मै क्या करूँ ? उसके जीते-जी मुझे यह धरोहर उसके हाथो मे सौप देना चाहिये थी।"—कुछ घबराहट दिखाती हुई छाया बोली।

"हाँ, अब क्या होगा ?" बिशन कुछ चकराया-सा बोला।

"तू उनका लड़का है न ?"

"हाँ !"

"तो तू ही क्यो नही ले लेता ? ले, यह है उसकी धरोहर ! मुझे बन्धन से मुक्त कर !"—कह कर छाया ने चोगे से एक बडा-सा भरा थैला निकाल कर बिशन की ओर बढ़ा दिया।

बिशन ने उसे अपने हाथों मे लेते हुये कहा—"लेकिन तू है कौन ?"

"यह जान कर तू क्या करेगा ? अच्छा, अब मै जाता हू !"—कह कर छाया दरवाजे के बाहर हो गई।

बिशन चकराया-सा उसको जाते हुये देखता रह गया।

सुबह बिशन के बाप की मृत्यु के शोक-समाचार के साथ-साथ यह बात भी सारे गाँव मे फैल गई कि बिशन का बाप मरने के बाद बेटे के लिये एक बहुत बड़ा थैला नोटो के गड्डों से भरा हुआ छोड़ गया है। नोटो के गड्डों की बात इतनी अजीब और आकस्मिक थी कि लोगो को सहसा विश्वास न हुआ। लेकिन बिशन का पड़ोसी जब आँखे फाड़-फाड़, हाथो को फैला-फैला कर नोटो की तायदाद का आँखो देखा हुआ अतिरंजित वर्णन गाँव मे चारों

ओर घूम कर करने लगा, तो लोगो को विश्वास करना ही पड़ा। जिस तरह पानी मे कंकड गिरने की जगह से वृत्याकार लहरे उठ कर बढती-बढती पानी के पूरे विस्तार तक फैल जाती हैं, उसी तरह यह समाचार ज्यों-ज्यों फैलने लगा, त्यो-त्यो नोटो की तायदाद भी बढने लगी। कोई कहता, नोटो के ये गड्डे बूढे के तकिये मे सिले थे। कोई कहता, नोटो की ही बात होती, तो कोई आश्चर्य मे न पडता। उसके रसोई घर मे भी एक बडा मटका चाँदी के रुपयो से भरा हुआ गड़ा था। कोई कहता, पता नही यह कजूस बूढा कब से रुपये जोड रहा था कि उसके घर मे जिस ताक पर भी हाथ बढाओ, नोटों के गड्डे हाथ मे आ जाते हैं। कोई कहता, देखो न यह बूढा इतना रुपया रखते हुए भी बेचारे बिशन को भिखारी की तरह रखता था। जितने मुँह उतनी ही तरह की बाते।

बिशन के दरवाजे पर हमददो की भीड़ लग गई। बूढे की मौत बिशन के भाग्योदय का कारण हुई, इसलिये लोगो ने उसे समझाया कि यह अवसर दुख मनाने का नही है, उसे खुश होना चाहिये कि बूढा जाते-जाते उसे लखपती बना गया। चाँदी की चमक बिशन की आँखों मे भर गई, आँसुओ के लिये उनमे जगह ही न बची। गरीबो के घर मे खुशियाँ भी रोती हैं, अमीरो के घर मे दुख भी मुस्कराते हैं।

लछिया के मामा ने जब यह खबर लछिया की माँ को सुनाई, तो वह अकचका-सी गई। छगा पन्द्रह-बीस दिनो से रात को उसके यहाँ नही आता था। वह उसके लिये दिनो-दिन अधिक चिन्तित हो रही थी। यह खबर सुन कर अचानक एक बात उसके मस्तिष्क मे बिजली की तरह कौंध गई कि कही छगा ने तो बिशन का खाली घर धन से नही भर दिया। छंगा ने कई बार ऐसा किया था, यह वह पहले भी सुन चुकी थी। उसने कुछ सोचते हुए अपने भाई से पूछा—"क्यो, तुमने जयदयाल (छगा का यही नाम उसने लछिया के मामा को बतलाया था) से तो बिशन की कोई बात नही

चलाई थी ?"

"सात-आठ रोज हुए वह एक दिन बड़ी रात गये आया था। पीपल के नीचे मुझे चौकी पर से जगा कर उसने बिशन के बारे में मुझसे पूछा था। मैंने उससे कह दिया था कि उसके आने के पहले बिशन ही से लछिया की शादी होने वाली थी। पर चूँकि बिशन बहुत ही गरीब बाप का बेटा है, इसलिये लछिया की माँ उससे लछिया का रिश्ता कायम करने में टाल-मटोल कर रही थी। मेरी बात सुन कर उसने सिर्फ 'हूं !' कहा, और उठ कर जाने लगा। मैंने उसे रोक कर तुझे जगाने को उठना चाहा, मगर उसने मुझे ऐसा नही करने दिया। जाते-जाते वह यह भी कह गया कि उसके आने की बात मैं तुझसे न कहूं। वह उस दिन बड़ा ही उदास और परेशान-सा मालूम होता था।"

यह सुन कर माँ का माथा ठनका। वह और भी चिंतित हो उठी। तो क्या उसका बना-बनाया खेल कोई अदृश्य हाथ छिपे-छिपे बिगाड़ने का प्रयत्न कर रहा है ?

लछिया अलग परेशान थी। वह रोज शाम को सरोवर के किनारे बैठी युवक के आने की राह घंटों देखा करती। जब वह न आता, तो उदास हो घर लौट आती। वह मन-ही-मन घुल रही थी कि कहीं उसकी अनुपस्थिति मे उस अजनबी से उसका ब्याह न कर दिया जाय।

माँ रात-रात भर जग कर छुंगा की प्रतीक्षा करती। वह सोचती, कहीं ऐसा न हो कि उसकी आँख लग जाय, और छुंगा आ कर लछिया के मामा से कुछ कह कर बिना उससे मिले ही चला जाय। उसने तय कर लिया था कि छुगा अगर उसे मिल जाय तो वह उसे अब कहीं न जाने देगी।

एक हफ्ता और बीत गया। आठवीं रात को, जब सारी सृष्टि नींद की गोद मे खामोश थी, घोड़ी की टापों की आवाज माँ के कानों मे पड़ी। वह खुशी के मारे बावली-सी हो टीले के किनारे आ-आँखे फाड़ कर आवाज की

ओर देखने लगी लगी। घोडी टीले की ही ओर पगडण्डी से सरपट भागी आ रही थी। माँ खुशी के मारे चीख उठी—"वेटा !"

टीले के पास आ सवार उतरा। घोडी की लगाम हाथ मे ले, वह टीले पर सिर लटकाये इस तरह चढ़ने लगा, जैसे वह युद्ध के मैदान से हार कर भाग आया हो। माँ दौड कर उससे लिपट गई, और विह्वल स्वर में बोली—"बेटा, तू कहाँ था इतने दिनों तक? मेरी आँखे तेरी राह देखते-देखते पथरा गई !"

छगा का निराश हृदय भर आया। विना कुछ कहे ही माँ को एक हाथ का सहारा दे, सिर लटकाये ही वह पीपल के नीचे तक आया। घोडी को पीपल की जड मे बाँध कर वही माँ को लिये बैठ गया। माँ बिलख कर बोल पडी—"बेटा, तू इस तरह चुप क्यों है? तेरे न आने से न जाने कैसी-कैसी चिन्तायें मेरे दिल और दिमाग को खा रही थी। मुझे मालूम होता की तू इस तरह अपनी बूढी माँ को भूल जायगा, तो मैं कभी तुझे अपने से अलग न करती। अब मैं तुझे कही न जाने दूँगी !"—कह कर माँ छगा के घुटने पर सिर रख कर रो पडी।

छगा की आँखो से झर-झर आँसू गिरने लगे। उसने माँ का सिर छाती से लगा जोर से चिपटा लिया उसका कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा था। माँ और बेटे के आँसुओ की धारे गगा-जमुना की धाराओं की तरह मिल कर वेग से बह चलीं।

बिछुडे प्यार की व्यथा मिलन की अश्रु-धारा मे बह गई। माँ ने अपने हाथो से छगा के आँसू पोंछे। छगा ने बच्चे की तरह सिसकते हुये माँ की गोद मे मुँह छिपा लिया। माँ उसके सूखे हुये बालों को स्नेह-विह्वल हो हाथ से सहलाती हुई बोली—"बेटा, लछिया की जननी बन कर जो सुख मुझे नही मिला, तेरी माता बन कर मुझे मिल गया। तुम दोनो से आज मेरे दोनो पहलू भर गये। मुझे अब जीवन मे कोई और चाह नही रही। तुम दोनों

मिल 'उनका' नाम चलाओ। अब मेरी आत्मा उनके चरणो मे जाने को तड़प रही है।"

छुगा और भी फफक पड़ा। उसे इस रूप मे कोई देखता, तो क्या उसे विश्वास होता कि यह वही डाकू छुंगा है, जिसका जिगर शेर का है, सीना फौलाद का है, जिसकी आँखो से आग की लपटे निकलती हैं, जिसकी दहाड सुन कर पहाड़ भी काँप उठता है? अन्तर्व्यथा से फड़कते हुये होंठो को दाँतों से बरबस दबा कर, रुलाई रोक वह बोला—"माँ, मै कितना भाग्यशाली हू कि तेरा बेटा बनने का मुझे गौरव प्राप्त हुआ! तू सचमुच मेरे पहले जन्म की माँ थी! लेकिन"...

"लेकिन क्या, बेटा?" माँ अकचका कर गोद से उसका सिर उठा कर बोली।

"वही कहने का साहस मै इतने दिनो से बटोर रहा था, माँ। लेकिन देखता हू कि आज भी उसे जबान पर लाने का साहस मुझ मे नही है। मै वज्र का आघात झेल चुका हू। पर तू कमजोर है। तू कैसे सह सकेगी वह आघात?"—कह कर छुगा ने सिर नीचे कर लिया।

"ऐसी क्या बात है, बेटा? तू कह मुझसे!"—व्याकुलता-मिश्रित उत्सुकता से माँ बोली।

"माँ, लछिया का ब्याह बि . बिशन से होगा!" हृदय के उमड़ते हुये व्यथा-वेग को रोक कर छुगा कह गया।

"बिशन से! तू यह क्या कह रहा है? नहीं, यह मेरे जीते जी नहीं हो सकता! बिशन लछिया के बाप का स्थान नही ले सकता! उनके सिहासन पर अगर कोई बैठेगा, तो वह तू होगा, नही तो वह खाली ही रहेगा!"—आवेश मे काँपती हुई माँ एक साँस मे कह गई।

"लेकिन, माँ"..

"नहीं, मै उसके बारे मे कुछ सुनना नही चाहती! वह 'उनके' पाँव की

धूल का भी अधिकारी नही !"—माँ ने जोर से सिर हिलाते हुये कहा।

"पर, माँ, लछिया उसे चाहती है। मै उससे वादा कर चुका हूं कि अगर उसका ब्याह होगा, तो बिशन से ही !"—दिल पर पत्थर रख कर छगा बोला।

"ओह ! अब मै समझी ! तो तूने इसीलिये मेरे यहाँ आना-जाना छोड़ दिया ! इसीलिये तूने बिशन का घर दौलत से भर दिया ! तुम सब मिल कर मेरे खिलाफ कुचक्र रच कर मेरे हौसलो को बरबाद करने पर तुले थे। तुमसे किस ने कहा कि लछिया बिशन को चाहती है ?"—दाँत पीसती हुई माँ बोली।

"मैने लछिया से पूछा था, माँ ! उसी ने कहा। उसी के सुख के लिये, उसी के हृदय के प्यार के लिये, माँ, मैने अपने दिल पर पत्थर रख कर उसे बचन दिया है कि माँ से कह कर मै उसका ब्याह बिशन से करा दूँगा ! माँ, मैं नही चाहता कि लछिया का जीवन तेरे आदर्श और मेरे प्यार के खातिर बरबाद हो जाय !"

"आदर्श और प्यार कुरबानी के ही खून मे रंग कर चमकते हैं, बेटा ! मेरा आदर्श और तेरा प्यार कोई साधारण वस्तु नहीं हैं, जो लछिया के चाहने भर से त्याग दी जायँ। तू भोला है। लछिया की फिक्र तू मत कर ! मैं उसे समझा लूँगी।"

"नही, माँ, दुनिया की सब बातें जोर-जबरदस्ती से उल्टी जा सकती हैं, पर हृदय मे जो सच्चे प्रेम की धारा एक बार बह जाती है, उसे उलटने की शक्ति किसी में नही है। मैं मर्द हू। आँधियो और तूफानों से हमेशा खेलता रहा हू। मै लछिया का प्यार दिल के कोने में दबाये जिन्दगी काट लूँगा। लेकिन लछिया एक कोमल फूल है। गरम हवा का एक झोंका भी लगा कि एक क्षण मे वह कुम्हला जायगी। मुझे मालूम है कि बिशन का प्रेम लछिया के हृदय मे कितनी गहराइयों तक पहुँच गया है। उससे वञ्चित कर उसे एक दिन भी सँभालना असम्भव होगा। इसलिये, माँ, तू क्या अपने बेटे का बचन

झूठा होने देगी ? उसे बचन दे चुका हू, माँ ! अगर उसे पूरा न कर सका, तो मै" कमर से कटार निकाल उसकी नोक अपने सीने से लगा वह फिर बोला—"अभी तेरे चरणो मे अपने इस जीवन का अन्त कर दूँगा।"

"बेटा !" माँ चीख पड़ी।

"कह दो हाँ, माँ !" गिड़गिडा कर छुन्ना माँ के चरणो पर गिर पडा। माँ फैली आँखो से शून्य मे देखती बोल पड़ी—"बेटा, तेरे प्यार की कुरबानी ने मेरे आदर्श को शरमा दिया ! उठ ! जो तू चाहेगा वही होगा !"

माँ के पैर छुन्ना के आँसुओ की धार से भीग गये।

६

लछिया और बिशन का ब्याह हो गया। हाथी पर चढ कर, पग-पग पर मुट्ठी-मुट्ठी भर रुपये लुटाते हुये बारात आई थी। लछिया का अग-अग जेवर से लद गया था, जैसे बसन्त मे पौदो की डालियाँ फूलों से लद जाती है।

विवाह के दिन लछिया ने उस युवक मुसाफिर की बहुत प्रतीक्षा की थी। जब वह न आया, उसने उदास बैठी माँ से पूछा था—"क्यो, माँ, आज मेरा ब्याह है। क्या वह आज भी नही आयेगा ?"

माँ के स्याह पड़े होंठो पर एक करुण मुस्कान बिखर गई थी। उसने एक लम्बी आह भर कर कहा था—"हाँ, बेटी, शायद वह अब कभी न आयेगा ! ले यह कटार वह अपनी निशानी दे गया है।" कटार दे कर उसने अपना सिर आँखों मे उमड़ते हुये आँसुओ को छिपाने के लिये झुका लिया था।...

एक साल के बाद लोगों ने आश्चर्य से सुना कि लाल कोठी मे छुन्ना ने पिछली रात फिर डाका डाला है, और अब की सदा की तरह उसने धन

ही नही लूटा है बल्कि कितने ही बेगुनाहों को कत्ल भी कर डाला है।

माँ ने जब डाके की खबर सुनी, तो उसे बिलकुल आश्चर्य न हुआ। वह आँखो को सिकोड कर, सिर हिला कर होठो मे ही बुदबुदाई—'छुन्ना पहले शेर था। भूख लगने पर शिकार को निकलता था। अब वह घायल शेर है! उसके सामने से कोई जिन्दा बच कर नही निकल सकता!'

लछिया क्या जाने उस छुन्ना को? पर वह अब भी रोज, जब सूरज पेडो की आड मे अपनी सुनहली किरणो का जाल समेटने लगता है, सरोवर के किनारे बैठी, हाथ मे वह कटार लिये उस पगडडी की ओर आँखे गडाये देखा करती है, जिससे उसका अच्छा मुसाफिर अपनी घोड़ी पर चढ कर उससे मिलने आया करता था, जिसने उसके हृदय की सबसे प्यारी इच्छा पूरी की थी, और जिसने उसे कृतज्ञता प्रकट करने का भी अवसर नही दिया था।

मंज़िल

अभी कुछ ही रात गुजरी थी। सरजू के तीर एक जर्जर झोपडी में मैं चटाई पर पड़ा था। मेरा युवक मिहनतकश मेजबान अपने नन्हे मुन्ना को गोद मे चिपकाये हुये मेरी बगल मे एक चटाई पर गहरी निद्रा मे बेहोश पड़ा था। उसकी मीठी नींद मे डूबी हुई स्वस्थ साँसे जैसे झोपडी मे मिहनत के मधुर गीतों के स्वर भर रही थी। मेरे सिर के पास मिट्टी के दीवट पर बर्रे के तेल का दीपक मन्द गति से जल रहा था। उसका धीमा प्रकाश युवक के थके चेहरे पर पड़ रहा था। उस प्रकाश मे मुझे लगा, जैसे मिहनत निद्रा का आवरण मुँह पर डाले मुस्करा रही हो। "मिनहत की मुस्कान!" मैंने होठो मे ही कहा। मेरे होंठ कोनो पर कुछ फैल कर रह गये। मैंने अपने चेहरे पर हाथ फेरा। एक ईर्या-भरी साँस मेरे मुँह से अबस निकल गई। और मेरी ललकती हुई आँखे युवक की चौड़ी छाती पर जा टिकी, जिसमें मुँह दुबकाये नन्हा शिशु उसकी माँसल बाहो के घेरे मे नींद में डूबी हुई नन्ही-नन्ही साँसे ले रहा था। उसका भोला-भाला मुखड़ा उस समय वैसे ही चमक रहा था, जैसे एक चट्टान के पास बैठे नाग के गेडुर के बीच उसकी मणि चमक रही हो।

अभी थोड़ी ही देर पहले मै रोज की तरह अपने प्यारे मेजबान के साथ उसके चौके मे बैठा था। मेरी मेहरबान मेजबानिन ने मोटी-मोटी ज्वार की रोटियाँ और चौराई का साग अपने गोरे-गोरे हाथों से मुस्कारते हुये थालियों

में परसा था। आज मैंने अनुभव किया था कि मेरी थाली मे उन मोटी-मोटी रोटियों को रखते समय पहले की तरह न उसके हाथ हिचके, और न उसका मन ही कमका था। इसलिये मुझे आज उन मोटी रोटियो मे पहले की अपेक्षा अधिक स्वाद आया। पहले तो मुझे लगता था कि मेरे मेजवानों के दिल मे यह बात बैठ गई है कि मै उनका रूखा-सूखा खा कर उनके ऊपर कोई एहसान कर रहा हू। इसी बात के कारण खाते समय और उसके बाद भी थोड़ी देर तक उनकी अपनेपन से भरी हुई प्यारी बातें सुनने को न मिलती थी, जिनको सुन कर सुस्वादिष्ट भोजन खाने से भी अधिक आत्मा को तृप्ति मिलती है। मै उनसे लाख कहता कि मुझे मोटी रोटियाँ बहुत मीठी लगती हैं, और छाछ मुझे बहुत भाता है, लेकिन इस बात को भी वे यही समझ कर सिर झुका लेते कि मै यह इसलिये कहता हू कि उन्हें अपनी गरीबी और मजबूरियों का एहसास न हो। आज मुझे बडी खुशी हुई कि आखिर मेरे मेजवानो के दिल मे वह बात निकल गई। आज पहिली दफा छाछ-भरे फूल के कटोरो को थालियो के पास रख कर मेरी मेजवानिन गोद मे अपने मुन्ना को लिये हमारे सामने आ बैठी, और खुल कर बातें की।

इनके यहाँ आज मेरी तीसरी रात थी। सरजू के उस पार इधर-उधर जंगलो और तट की बस्तियो मे छिपे-छिपे एक फरार की तरह बेसरो-सामान भटकने के बाद मैंने अपने प्यारे गाँव की ओर रुख किया था। सावधानी का तकाजा था कि मै शामवाली नाव से घाट उतरूँ, और रात के अँधेरे मे ही पुलिस के कुत्तो से अपने शरीर की महक बचाते गाँव पहुँच जाऊँ। दिन भर आकाश मे छाये हुये बादलो मे छिपा हुआ सूरज सन्ध्या को पश्चिमी क्षितिज पर बादलों के घूँघट का एक कोना उठा कर झाँका, और मेरी नाव खुली। सन्ध्या की पीली आभा उमडती हुई नदी के बरसाती मटमैले जल पर एक फीकी, उदास मुस्कान बिखेर रही थी। मन्द-मन्द शीतल पुरवैया नदी की सतह को अपने कोमल करों से सहला कर नन्ही-नन्हीं

सिरहन की लकीरो-सी लहरें उठा रही थी। आकाश मे बैंगनी रङ्ग के बादलो की छाया मे कुछ दरियाई सफेद परो वाले पंछी रूई के नन्हे गालो की तरह हवा मे इधर-उधर तैर रहे थे। नदी मे यहाँ-वहाँ कुछ बड़ी नावे सुफेद पाल ताने धीरे-धीरे बही जा रही थी, जैसे मानसरोवर मे कुछ राजहंस अपने एक-एक डैने को ऊपर उठाये तैर रहे हों। मेरी नाव मे अधिकतर युवक ग्वाले थे, जो पास के कस्बे से दूध-दही बेच कर अपने गाँवो को वापस जा रहे थे। उनके चेहरे पर इस वक्त प्रसन्नता छाई हुई थी। कुछ आपस मे हँसी-ठिठोली कर रहे थे। कभी-कभी पूरी नाव उनके उन्मुक्त हास्य से हिल जाती थी। धरती माता की इन युवक सन्तानो के हास्य मे जो हृदय की उन्मुक्त उत्फुल्लता फूट पड़ती थी, उसमे मेरे हृदय की सारी चिन्तायें क्षण भर को डूब जाती थी। थोड़ी देर के बाद एक मनचले युवक ग्वाले ने अपने सुरीले गले से एक भोजपुरी प्रेम-गीत छेड़ दिया। मै लोक-गीतो का चाहक हू। जहाँ-कहीं भी देहाती युवक या युवतियो का झुण्ड देखता हूं, उनके गीतो के लिये ललचा जाता हूं। यह मेरा सौभाग्य था कि बिना मेरे कहे ही युवक ने अपना गीत शुरू कर दिया। अन्तरा की पंक्तियाँ वह अकेले गाता था, और टेक की पक्ति उसके कई साथी मिल कर गाते थे। उस प्रेम-गीत मे नदी का स्वाभाविक प्रवाह था, झरने का प्राकृतिक सगीत था, जंगली मधु की मिठास थी, और धरती के प्रेम के सच्चे उद्‌गार थे। उस गीत का मतलब यो था—

'ए माँझी, तू जल्दी-जल्दी डाँड़ चला।
तीर पर मेरी फूल-सी सुकुमार प्रेमिका
अपनी बड़ी-बड़ी जामुन-सी रसीली आँखो पर
केले के फूल-से मेहदी-रचे हाथो का साया कर
कभी मेरी राह की ओर
और कभी डूबते हुये सूरज की ओर

धड़कते हुये नन्हे कलेजे को सीने मे दबाये हुये देख रही होगी !
ए माँझी, तू जल्दी-जल्दी डाँड चला !
आज मैने अपने गले की सोने की मोहर बेच कर
अपनी प्रेमिका के हाथो के लिये कड़े खरीदे है।
वह अपने गोरे-गोरे हाथ बढाये
अधीरता से मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी !
ए माँझी, तू जल्दी-जल्दी डाँड़ चला !
आज मै अपनी प्रेमिका के हाथ अपने हाथ मे ले
उसकी गोरी-गोरी, नरम कलाइयो मे कड़े पहनाऊँगा।
हर्ष के मारे उनकी छाती फूल जायगी,
उसकी अँगिया के बन्द टूट जायेगे,
उसकी गुलाबी आँखो से प्रेम-रस छलक पड़ेगा।
मुझे मेरे प्रेम का पुरस्कार मिल जायगा।
मेरा अधीर प्रेम मेरे कलेजे मे धडक रहा है !
ए माँझी, तू जल्दी-जल्दी डाँड़ चला !'

गीत की मधुरता मेरे हृदय पर छा गई। मै उस वक्त के लिये जैसे सब-कुछ भूल गया।

सहसा माँझी की दहशत मे काँपती हुई आवाज मेरे कानो से आ टकराई—"तूफान आने ही वाला है !" मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे एक मीठे सपने से मेरे कन्धो को झिझोड़ कर जगा दिया हो। मेरे हृदय मे सहसा प्रश्न उठा—'भगवान् ! अब उस युवक प्रेमी का क्या होगा ? तीर की किसी झोपडी के द्वार पर प्रतीक्षा मे खडी उसकी युवती प्रेमिका का क्या होगा ? इतने में ही नाव जोर से हिली। लोगों मे खलबली मच गई। मैने अपने मे आ जो देखा, तो सब की आँखे उत्तर-पश्चिम के कोने मे क्षितिज पर उठी हुई थी। उनकी फैली आँखो मे खौफ थर्रा रहा था। मैने आकाश की ओर

नजर उठाई। सूरज डूब चुका था। आकाश पर काले बादल जमे हुये-से छाये थे। उत्तर-पश्चिम के कोने में आकाश पर पीली गर्द का पर्दा-सा पड गया था। वातावरण की शान्तता भय की सीमा तक पहुँच चुकी थी। नदी की तरङ्गों की आवाज उस सन्नाटे में अर्द्ध-रात्रि की चीत्कार-सी डरावनी लग रही थी। माँझी बेतहाशा डॉड चलाये जा रहा था। नाव नदी के बीच में जल को चीरती तूफानी वेग से घाट की ओर सर्र-सर्र बढ़ती जा रही थी।

नाव अभी थोडी ही दूर आगे बढी होगी कि ठण्डी हवा के झोंके आने लगे। नदी की लहरें ऊँची उठ-उठ कर नाव के दोनों किनारों पर थपेड़े मारने लगी। डोलने लगी मँझधार में जीवन की नैया! दूर था अभी साहिल। बेहद घबराहट छा गई माँझी की आँखों में। अब कौन लगाये पार बीच भँवर में डोले नैया? धड़कने लगा सब का हृदय। देखते-देखते छा गया घटाटोप अन्धकार। हहराती हुई आ पहुँची प्रचण्ड वेग से आँधी। लहरें चीत्कार करती नाव को गेंद की तरह उछालने लगी। मच गई खलबली यात्रियों में। जोर की डगमगाहट हुई नाव में। आ गई नाव आँधी की चपेटों में। विकराल सर्पों की तरह फुफकारती हुई उन्मत्त लहरों ने चारों ओर से घेर लिया नाव को। तैरने लगी सब की आँखों में मृत्यु की परछाइयाँ। करीब था कि नाव के साथ-साथ सब को वे प्रलयकारी लहरें निगल जातीं कि माँझी जोर से चिल्लाया—"जान का मोह हो, तो कूदो तूफान में! नहीं तो नाव सब को लेकर बैठ जायगी!" कह कर वह छपाक से धारा में कूद पड़ा। और कूद पड़े यात्री सरजू माँ की गोद में। प्रचण्ड धारा में लहरों के ऊपर काले-काले सिर क्षण भर फूलों की तरह काँपते हुये नीचे-ऊपर आ कर अन्धकार में अदृश्य हो गये।

मेरे लिये यह कोई पहला भयानक अनुभव नहीं था। मैंने कितनी ही बार सावन-भादों में लबालब भरी गंगा को तूफानी रातों में अकेले या अपने साथियों के साथ पार किया था। कितनी ही बार तूफान और आँधियाँ आईं

थी, और मेरे जीवन के पर्वत मे टकरा कर चली गई थी। जिसका जीवन स्वयं एक तूफान रहा है, जो आँधियो और आफतो की गोद मे भी एक जंगली फूल की तरह हमेशा मुस्कराता रहा है, जिसने क्रान्ति की ज्वालाओ को चूमने की महती इच्छा हृदय मे पाल रखी है, जिसकी जीवनी साहसिकता और खतरे की अनेक रोमाचकारी कहानियों का सग्रह मात्र है, उसके लिये ऐसी हल्की-फुल्की आफते क्या महत्व रखती हैं ? हाँ, मुझे उन भोले-भाले नौजवान ग्वालो के लिये अवश्य दुख हो रहा था। पता नहीं उन बेचारो पर क्या बीती होगी। विशेष कर वह गीत गाने वाला नवयुवक तो मुझे बेहद याद आ रहा था। उसके गीत की मनोहर पक्तियाँ अब भी मेरे हृदय मे गुनगुना रही थीं। गीत गाते समय उसकी काली-काली आँखो मे जो अलमस्ती छा गई थी, और उसकी घनी भौहों मे एक स्वाभाविक तनाव पैदा हो जाने से उसके चेहरे पर जो धरती की जवानी मुस्करा उठी थी, वह अब भी मेरी आँखो के सामने से नहीं हट रही थी।

मै भावुक नही हू। हृदय की दुर्बलताये मुझे धोखा नहीं दे सकतीं। मैंने अपने को, अपने जीवन को, अपनी भावानओ को साधा है। मेरे लिये जीवन की राह मे कोई फिसलन नहीं है। मेरे कदम मजबूत और सधे हैं। मेरा स्वभाव, मेरी आदतें वर्षो की कडी परीक्षाओ और जोखिमो के अभ्यासों के साँचे मे ढली हैं। मेरा हृदय चोटे खाता-खाता पत्थर से भी सख्त हो गया है। लेकिन प्रकृति वह है, जो पत्थर की शिलाओ मे भी दरारे कर दे, प्रकृति वह है, जो पत्थर की भी छाती चीर कर झरने बहा दे, प्रकृति वह है, जो वीराने मे भी नन्हें-मुन्हे फूल उगा दे!

ऐसे अवसरो पर मेरी सारी साधनाये नि.शक्त हो जाती हैं, मेरे सारे अभ्यास ढीले पड जाते हैं। प्रकृति के इन पुत्रों के सामने मै अवस-सा खिच जाता हू, और अपने दिल के तारो को उनके जीवन के मीठे-मीठे गीतो से भर देता हू। पहाड़ो, जगलो और वीरानों मे जहाँ कोई अपना हमदर्द नहीं

मिलता, मै प्रकृति की गोद मे बैठ कर जब इन गीतों को गाता हूं, तो मुझे लगता है, जैसे ग्वाले कृष्ण की बाँसुरी मेरे चारो ओर मीठी-मीठी ध्वनियो का वृत्त बना कर मुझ पर अपनी मोहिनी की वर्षा कर रही है। उस वक्त मै अपना अकेलापन भूल जाता हू। वातावरण का सारा सूनापन गीतो की मधुर लहरी मे खो जाता है।

हाँ, तो मैने तनिक भी विचलित हुये बिना शवासन लगाया, और अपने को वेगवती धारा मे एक सूखे काठ के कुन्दे की तरह लहरों पर उछलते हुये बहने को छोड़ दिया। लहरे मुझे अपनी गोद मे ले भूला भुलाने लगी। आँधी गर्जन के गीत सुना रही थी। ऊपर से रेत और धूल केसर की तरह झड़ रही थी। खासा वसन्त का मजा लेता मै यह शेर गुनगुनाता हुआ जा रहा था—

'बाज आ साहिल पे गोते खाने वाले बाज आ!
डूब मरने का मजा दरियाये बेसाहिल मे है!'...

सहसा पास ही 'बल-बल' की आवाज हुई। मैने समझा कि मै भँवर मे पड गया हूं। बचने के लिये मैने पानी की सतह पर हाथो का जोर लगा कर अपने को उछाल दिया। फिर जो धारा पर गिरा, तो मुझे लगा कि मेरी पीठ किसी की खोपडी से जा टकराई है। मैने मुड कर उधर देखा। फिर वही 'बल-बल' की आवाज आई, और एक काला सिर-सा ऊपर उठ कर पानी मे डुबकी लगा गया। मुझे वहाँ किसी आदमी के होने का शक हुआ। धार से मुड़ कर मैने डुबकी लगाई। एक कुरते का दामन मेरे हाथ मे आ लगा। मैने उसे ऊपर खीचा सचमुच वह एक आदमी ही था। उसका ऊपर आना था कि वह मेरे ऊपर दहशत मे काँपता हुआ झपटा। मैं अपना हाथ सीधा कर उसे अलग ही थामे रहा। वह मुझे पकड़ने को छटपटा रहा था। मैने डाँट कर जोर से कहा—"घबराओ नही! मै तुम्हे डूबने नही दूँगा। मेरे सहारे तुम धीरे-धीरे हाथ-पाँव चलाते बढ आओ!"

मेरे डाँटने का असर उस पर पडा। वह सँभल गया, और सतह पर पट फैल कर अपना हाथ-पाँव एक कुशल तैराक की तरह चलाने लगा।

थोडी देर मे आँधी चली गई। आकाश मे छाई हुई पीली गर्द बैठने लगी। लहरो का चिग्घाड़ बन्द हुआ। आकाश मे तारे झलमलाने लगे। आँधी अपने साथ बादलो को भी उडा ले गई थी।

"अब आप मेरा कुरता छोड दीजिये, मै यो भी तैर सकता हू।"—उसने कृतज्ञा-भरी आवाज मे कहा। मैने उसका कुरता छोड दिया। और उसके बिलकुल पास हो कुछ बात करने की गरज से साथ ही तैरने लगा। मै उसकी ओर देख कर कुछ कहने ही वाला था कि मेरी आँखे आश्चर्य और हर्ष से भर गई। वह आदमी नाव पर गीत गाने वाला युवक ही था। मैने उसके कन्धे को थपथपा कर कहा—"युवक, तुमने मुझे पहिचाना ?"

उसने अपनी आँखो का पानी हाथ से पोछ कर मेरी ओर देखा। मैने अपना मुँह उसकी ओर कर दिया। उसकी आँखे अँधेरे मे बिजली की तरह चमक उठी। मुझ पर नजर गडाये ही वह बोला—"हाँ, आप भी तो उसी नाव पर थे ! मै तो भँवर मे पड़ गया था। अगर आप न होते, तो" कहते-कहते जैसे भँवर की बात साच कर उसे रोना आ गया।

"भाई, कैसी बुजदिली की बाते करते हो ! सच्चे प्रेम के गीत गाने वाले मे हँसते-हँसते मरने का साहस होना चाहिये !" मैने उसके भीगे बालो पर हाथ फेरते हुए कहा।

मै मरने से नही घबराता। सच्चे प्रेम मे जहाँ साहस है, शक्ति है, वही प्रेमी के दुख की आशका की कमजोरी और चिन्ता भी है। सोच रहा हू कि अगर मैं कही डूब गया होता, तो मेरी नयना और मुन्ना का क्या होता ?" कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई, और उसकी आँखो से प्रेम के आँसू टप्-टप् चू कर नदी के मटमैले पानी मे विलीन हो गये।

"अच्छा, अब हमे किनारे का रुख करना चाहिये," जोर का एक हाथ

पानी मे मार कर मैने बात का रुख बदलने के लिये कहा। उसी सिलसिले में कोई और बात जोड़ कर मैने उसे और विचलित करना उचित न समझा।

मैने उससे कुछ जोर से हाथ मारने को कहा। वह किसी चिन्ता मे डूबा हुआ-सा मेरे साथ बढने लगा। अभी-अभी जो एक भयानक सत्य की ज्योति उसकी आँखो के सामने झलमला गई थी, उसने जैसे उसके भोले दिल पर एक जोर का घूसा मार दिया था। शायद वह सोच रहा था, 'एक-न-एक दिन मै मर जाऊँगा। मेरे प्रेम और सुख के सपने बिखर जायँगे। मेरा बसा हुआ घर उजड़ जायगा। मेरी नयना और मुन्ना बिलख-बिलख कर जान दे देगे।' मै उसे कुछ समझाना चाहता था। जो सत्य एक-ब-एक पर्दा उठ जाने से उसके सामने नंगा हो गया था, उसे फिर मै ढक देना चाहता था। सत्य को ढॅक कर या उससे आँखे मूँद कर ही तो आदमी झूठे जीवन को पालता है। पर यह सोच कर चुप ही रहना ठीक समझा कि जिस प्रकृति ने उसके हृदय पर घूसा मारा है, वही उसकी चोट को सहला कर ठीक भी कर देगी। पतझड़ मे जो कोयल उजड़े बाग को देख कर मूक हो जाती है, क्या वही वसन्त आने पर नयी उमगो के साथ नहीं कूक उठती? जिस प्रकृति मे गर्जन की भयकरता है, क्या उसी मे गु जन की मधुरता नही है?

थोड़ी देर के बाद हम दोनो किनारे पर थे। सामने ऊँचे कगार को देखते हुये मैने कहा—"भाई, तुम्हारा घर तो कही पास ही होगा?"

"हाँ, ऊपर चलिये, तो मै ठीक-ठीक बता सकूँगा कि हम कहाँ है।" —उसने उदास स्वर मे ही कहा।

हम दोनो अपने कपड़े निचोड़ते हुये कगार पर तिरछे चढने लगे। बलुधॅस मिट्टी मे हमारे पैर घुटनो तक धॅस जाते थे। पास ही कगार टूट-टूट कर नदी मे गिर रहा था। नदी का पानी उछल कर गिरी हुई मिट्टी को अपनी गोद मे दबा लेता था। ठण्डी हवा झाऊ के पौदों मे अटकती हुई साँय-साँय बह रही थी। आकाश मे उड़ते हुये बादलो के कुछ टुकड़े अँधेरी रात के

जगमगाते हुए तारो से आँखमिचौनी खेल रहे थे।

"वह सामने जिस जगह से रोशनी आ रही है, बसरखापुर है। वहाँ से मेरा गाँव करीब एक मील पच्छिम सरजू माँ के किनारे है।"—ऊपर आ कर सामने रोशनी की ओर इशारा करता हुआ युवक बोला।

मुझे यह समझते देर न लगी कि मै कहाँ हू। मैने उसकी पीठ थपथपाते हुये कहा—"तब तो हम घाट के पास ही हैं। अच्छा, अब तुम जाओ, नयना तुम्हारी राह देख रही होगी। मेरी ओर से अपने मुन्ना के हाथ पाँव चूमना।" कह कर मै पूरब की ओर मुडा।

"लेकिन आपको कहाँ जाना है?" युवक ने मेरी पीठ पर हाथ रख कर पूछा।

मैने मुड कर देखा, युवक की आँखे जैसे कृतज्ञता के भार से झुकी जा रही थीं। मैने कहा—"मै हिरामनपुर जाऊँगा।"

"हिरामनपुर!" कुछ सोचते हुए युवक ने कहा—"हिरामनपुर तो यहाँ से चार कोस है। अगर बुरा न माने, तो आज रात को मेरे यहाँ ठहर जाइये! कल सुबह चले जाइयेगा। यो भी आप काफी थक गये हैं।"

"तुम इसकी फिक्र न करो! इस हालत में भी मैं दस-पन्द्रह कोस दौडता हुआ जा सकता हू।"

"यह तो आपका शरीर ही कह रहा है। लेकिन अगर कोई खास हर्ज न हो, तो मेरी विनती स्वीकार करे! नयना आप से मिल कर बहुत खुश होगी। मेरी ससुराल हिरामनपुर के पास ही पुरवा पर है।" शरमा कर उसने आँखे नीची कर ली और पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगा।

मेरे दिमाग मे कोई बहुत पुरानी बात जैसे बिजली की तरह कौध गई। मेरे मुँह से अचानक निकल गया—"तुम्हारी नयना सुनयना तो नहीं है?"

"हाँ-हाँ, उसका नाम सुनयना ही है, पर मै नयना कह कर पुकारता हूं। क्या आप उसे जानते है?"—आश्चर्य-चकित हो पलको को मलकाते हुए युवक ने पूछा।

उत्तर मे मैने एक मीठी याद मे खोया हुआ-सा सिर हिला दिया।

"तब तो आप जरूर चलिये !"—मेरे हाथो को अपने हाथो मे लेता हुआ युवक मचल पड़ा।

सुनयना की याद के साथ ही न जाने कितनी बाते मेरी आँखो के सामने विस्मृति के अन्धकार से उभर कर तारों की तरह चमकने लगीं। मैने अपने हृदय की बातो को अन्दर ही दबाते हुये कहा—"भाई, वह जमाने की बात हो गई। अब क्या सुनयना मुझे पहिचानेगी ! यह मेरी खसखसी डाढ़ी, मेरे बेढंगे तौर पर बरसात की घास की तरह बढे हुये सिर के बाल, यह चेहरे का धूप मे झुलसा हुआ रङ्ग, मेरी आँखों मे जमी हुई यह दृढता देख कर क्या वह डर न जायगी ? नही-नही, भाई, तुम जाओ ! अगर हो सका, तो फिर कभी मै तुम्हारे यहाँ आऊँगा ! उसके हाथों से अपने हाथ छुड़ा कर मै फिर मुड़ने को हुआ कि वह मेरे कन्धों को अपने मजबूत हाथो से पकड़ मुझे अपनी ओर करके बोल पड़ा—"यह आप क्या कहते हैं ? नयना को जब मालूम होगा कि आपने उसके सुहाग की रक्षा की है, तो वह आपके चरणों को अपने हाथ से धोयेगी, और एक देवता की तरह आपकी पूजा करेगी। आप मेरी बिनती यो न ठुकराये ! मै आपके पैरों पड़ता हू।" कह कर वह मेरे पैरों पर झुका ही चाहता था कि मैने उसे ऊपर ही अपने हाथों मे रोक लिया। उसकी आँखो मे उसके हृदय का नम्र आग्रह तरल हो झलमला उठा। वह गिड़गिडा कर फिर बोला—"तो चल रहे है न ?"

मै उसकी गिड़गिडाहट की अहवेलना न कर सका। मेरे मुँह से अबस ही निकल गया—"हाँ, चलो !"

उसकी आँखे हर्षातिरेक से चमक उठी। खुशी मे पागल-सा हो उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपनी ओर खीचा। मैने ठिठक कर कहा—"चल तो रहा हूं, मगर तुम्हे भी मेरी एक बात माननी होगी !"

"मै आपकी हर बात मानने के लिये तैयार हूं। आप चलिये तो !" उसने

फिर मेरा हाथ खींचा ।

मैंने फिर रुक कर कहा—"नहीं, पहले तुम मुझे बचन दो कि तुम मेरी बात मानोगे । तब मै अपना कदम उठाऊँगा ।

मैंने पहले ही कह दिया कि आप जो भी कहेगे, मै करने के लिए तैयार हू । आप कहिये न !" उसने कुछ झुँझला कर कहा, जैसे अब एक क्षण भी रुकना उसे खल रहा था । वह जल्दी से जल्दी मुझे लिये सुनयना के पास पहुँचने के लिये उतावला हो रहा था ।

"वादा करो कि तुम सुनयना से इस दुर्घटना और मेरे हिरामनपुर के होने की बात न कहोगे !"

"भला ऐसा क्यो ?" उसने तनिक आश्चर्य से कहा ।

"चाहे कोई भी वजह हो । अगर तुम मुझे अपने साथ ले चलना चाहते हो, तो तुम्हे मेरी यह शर्त माननी होगी !" मैंने दृढता के शब्दो मे कहा ।

"अच्छा !" उसने मुँह लटका कर कहा, जैसे उसकी सारी खुशी पर पाला पड गया हो ।

अब हम युवक के गाँव की राह पर थे । आगे-आगे युवक, पीछे-पीछे मै अँधेरी राह पर दो छायाओ की तरह बढ रहे थे । आकाश के पश्चिमी कोने मे चतुर्थी का पीला चाँद बादलो के झुडो से लड़ता-झगड़ता अपना मद्धिम प्रकाश धरती पर फेकने का व्यर्थ-सा प्रयास कर रहा था । राह के दोनो ओर जहाँ-कही भी वर्षा का पानी खेतों मे इकट्ठा हो गया था, मेढकों का दल टर्रा रहा था । पीछे झाऊँ के जगलों से झिंगुरों के चिल्लाने की आवाज आ रही थी । हवा सर्र-सर्र हमारे भीगे कपडो को फडफडाती हुई बह रही थी । मै युवक के पीछे-पीछे चला जा रहा था सुनयना से मिलने । यह सयोग की खूबी ही तो है कि जो सुनयना शुरू जवानी के दिनों मे मेरी एक मामूली-सी भूल के कारण शायद हमेशा-हमेशा के लिये सहसा मुझसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुकी थी, और न जाने कितनी बार चाह कर भी मै अपनी उस भूल के

लिये उससे क्षमा न माँग सका था, उसी सुनयना के सामने आज परिस्थिति मुझे यों खड़ा कर देने वाली है। आज मैं जो कुछ बना हूं, जिस रूप में भी आज मेरा जीवन खड़ा है, उसकी नींव जब मैं बहुत गहरे पहुँच कर देखता हूं, तो मालूम होता है कि उसी एक भूल की ईंट पर पड़ी थी। वह भूल मेरे जीवन में प्रथम और अन्तिम थी, जिसको लाख प्रयत्न करके भी मैं कभी भूल न सका। वह मेरी भूल की घटना जैसे हमेशा मेरे जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं की सतह पर जल में तेल की बूँद की तरह तैरा करती है। यह युवक, सुनयना का पति, जो मेरे आगे-आगे चल रहा है, यदि मेरी उस भूल को जनता, तो क्या वह मुझे सुनयना के पास ले जाने को इतना आतुर होता ? ..

मेरे कदम युवक के पीछे-पीछे उठ रहे थे। और मेरी आँखों के सामने से मेरे अतीत पर छाये हुये विस्मृतियों के पर्दे एक-एक कर खिसक रहे थे। .. लड़कपन से ही सुनयना अपनी माँ के साथ मेरे यहाँ दूध देने आती थी। उसकी माँ मेरे यहाँ दूध दे कर गाँव में औरों के यहाँ दूध देने चली जाती, और छोड़ जाती सुनयना को मेरे घर। नन्ही सुनयना अपने नन्हे-नन्हे हाथों से उपलों को बोरसी में सजा कर उसमें आग धधकाती, कहतरी में पानी डाल उसे सितुही से खुरच-खुरच कर साफ करती, और तब मेरी अम्माँ से बोरसी पर दूध रखने को कहती। इतने में यदि उसकी माँ लौट आती, तो वह उसके साथ चली जाती। नहीं तो मेरे पक्के आँगन में चुपचाप बैठ कर टुकुर-टुकुर इधर-उधर देखा करती। मेरे घर में मेरे सिवा और कोई लड़का या लड़की न थी, जिसके साथ वह खेलती-कूदती। और मेरे साथ आफत यह थी कि सुबह में एक मास्टर मुझे पढ़ाने आया करते थे। कभी-कभी जब मैं बिना कुछ खाये-पिये मास्टर के आ जाने पर पढने- बैठ जाता था, तो मेरी अम्माँ मुझे बुलाने के लिये सुनयना को भेजती। सुनयना मेरे पढ़ने के बाहरी कमरे के दरवाजे पर आ कर आवाज देती—"किशन भैया, किशन भैया ! चाची

बुला रही हैं।" मै तो इस अवसर की ताक मे रहता ही। झट किताब बन्द कर उठ पड़ता। और मास्टर के मुँह से 'जल्द आना!' निकल कर मेरे कानों से टकरा भी न पाता कि मै कमरे से बाहर होता। सुनयना मेरे हाथ से लिपट कर मुस्कारती हुई आँखों से कभी मेरा मुँह देखती और कभी सामने देखती हुई मेरे साथ आगे बढ़ती। उस वक्त वह बेहद खुश होती, जैसे एक लड़की सहसा अपने हाथ मे एक खुशनुमा गुड्डा पड़ा देख कर खुश हो जाती है। चौके के पास पहुँच कर सुनयना ठिठक जाती। मै अन्दर जा अम्माँ के सामने खड़ा हो जाता। वहाँ खड़ा-खड़ा मै कभी अम्माँ की ओर देखता, और कभी द्वार पर सुनयना को, जो खड़ी-खड़ी बाल-सुलभ लज्जा मे सिर झुकाये अपनी नन्ही उँगलियो से दरवाजा कुरेद रही होती। छिपली मे गरम-गरम हलुआ निकाल कर अम्माँ मेरी ओर बढा देती। मैं उसे कुरते का दामन लगा हाथ से उठाने को होता कि अम्माँ बोल पड़ती—"यहीं बैठ कर क्यों नहीं खा लेता?" मेरी सहमी हुई नजर द्वार पर खड़ी सुनयना की ओर मुड़ जाती। अम्माँ उसे देख कर मुस्कराती हुई कहती—"अच्छा, अच्छा, जा!"

सुनयना को जाने उस वक्त कैसा लगता कि वह सिर झुकाये ही वहाँ से हटने लगती। मैं उसके पास आ अपने कन्धे मे उसका सिर छू देता। वह अकचका कर मेरी ओर देखती। मैं मुस्करा देता। और तब हम आँगन के कोने मे बैठ जाते। मै छिपली के हलुए को दो भागों में बाँटने के लिये अँगुली से लकीर खींचने लगता। मेरी अँगुली गरम हलुए से जल जाती। मैं सी करके उसे ऊपर उठा लेता। सुनयना जोर से ताली पीटती हँस पड़ती। मैं अपनी झेंप मिटाने के लिये उसका हाथ पकड़ कर हलुए पर रख देता। वह चिल्ला उठती। मै कहता—"कहो, कैसा लगा? अब क्यों नहीं हँसती?" वह रूठ कर उठने को होती। तब मैं उसका हाथ पकड़ अपने पास उसे खींच लेता। और आदेश के स्वर में कहता—"खाओ!" वह कहती—

"ऊहूं !" मै थोड़ा-सा हलुआ ले उसे फूँक मार कर ठडा कर उसके मुँह में डाल देता । वह सिर झुकाये ही आँखे मलकाते हुये मुँह चलाने लगती ।

फिर खा-पीकर हाथ मे हाथ मिलाये हम उस वक्त तक आँगन मे खेलते-कूदते रहते जब तक कि माँ की डाँट न पड़ती, या बाहर से मास्टर की पुकार न सुनाई देती । उस वक्त जब मै सुनयना का हाथ छोड़ता, तो उसकी आँखो में सहसा एक ऐसी उदासी छा जाती, जिसे देख कर मेरा मन मसोस उठता। तब मै फिर उसका हाथ अपने हाथ मे ले लेता । और उसे लिये ही पढने के कमरे मे जा बैठता । वह सहमी-सहमी मेरी बगल मे बैठ जाती । मै किताब खोल कर पढने लगता । और वह कभी मेरा मुँह, कभी मास्टर की ओर और कभी किताब की ओर देखती चुपचाप बैठी रहती ।.

देखते-देखते यो ही नाच-खेल मे जाने कब बचपन की मासूम घड़ियाँ बीत गई । मै अग्रेजी पढ़ने शहर मे चला गया । अब सुनयना से मेरी भेंट छुट्टियो मे ही होती जब मै घर आता ।

शुरू जवानी के दिन भी क्या होते हैं, जब हर लड़की और लडके का
'जीवन एक प्रेम-कहानी है !
हर जीवन मे एक राजा है,
हर राजा की एक रानी है ।'

आज मुझे ठीक-ठाक याद नही कि वह कौन-सी घड़ी थी, जब सुनयना अपनी मद-भरी आँखो मे प्रथम वसन्त का सन्देशा लिये मेरी यौवन-वाटिका मे आ खडी हुई । आज वह क्षण मेरी स्मृतियो की पकड़ मे नही आता, जब सुनयना पहले-पहले मेरी अलस आँखो मे चाँदनी रातो मे उगने वाले रूपहले सपनो की रानी बन कर आ बसी थी । अपने विगत जीवन की घटनाओ के जाल मे उलझ कर उस घटना का समय-निर्देश करने मे आज मै अपने को असमर्थ पा रहा हू, जब सहसा सुनयना मेरे उमंगो-भरे हृदय पर सावन की रिमझिम का नशा बन कर छा गई थी ।

सुनयना अब सयानी हो गई थी। मुझे सामने देख कर वह अब अपने मुँह पर घूँघट खींच लेती थी। उसके किनारीदार घूँघट के नीचे उसकी तनिक आगे को उठी हुई ठुड्डी में जो कम्पन होता, उससे जाहिर था कि वह अन्दर-ही-अन्दर शरमाई हुई सी मुस्कराती होती। मेरे जी में तो आता कि उसका घूँघट उलट दूँ, और पहले ही की तरह उसके दोनों हाथ अपने हाथों से पकड़ उसे आँगन में खींच लाऊँ। मगर, आह! अब वे बचपन के नन्हे-नन्हे मासूम हाथ कहाँ थे? अब तो उन हाथों में विद्युत-धारा बह रही होगी। मैंने छुआ नहीं कि दिल पर शाक लगा।

उस सुबह भी सुनयना आँगन के कोने में बैठी हुई बोरसी पर दूध बैठा रही थी। अम्माँ रसोई में बझी थीं। मैं हल्के-हल्के कदम रखता सुनयना के सामने बरामदे की दीवार की ओट में जा खड़ा हुआ। आज कई कोशिशों के बाद सुनयना को मैं बिना घूँघट के देख पाया था। मेरी आँखें उसके कपोलों पर पूर्व परिचित बचपन की नटखट लाली को खोज रही थीं, मगर अब तो जैसे उस लाली पर यौवन की लावण्यता ने अपना माधुर्य बिखेर दिया था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अब अधिक काली हो गई थीं, और ऐसी लग रही थीं, जैसे लम्बी-लम्बी, उभरी पलकों की ओट में शराब का समुद्र हिलोरें ले रहा हो। उसकी भौंहें घनी हो गई थीं, और अब उसमें अधिक बाँकपन तथा तनाव आ गया था। उसके होंठ अधिक सुर्ख हो बीच में तनिक आगे को झुक गये थे। मैं कुछ देर तक छिपे-छिपे उसे खोया-सा देखता रहा। न जाने क्यों मेरे दिल में यह भाव उठ रहा था कि सुनयना यों ही मेरे सामने अनजान-सी बैठी रहती, और मैं छिपे-छिपे उसे देखता रहता, देखता रहता! इतने में वह उठने को हुई। मेरे मुँह से सहसा निकल गया—"सुनयना!"

उसने अकचका कर मेरी ओर एक दृष्टि फेंकी, और झट से माथे का आँचल चेहरे पर खींच लिया। मुझे लगा, जैसे एक काँपती हुई विद्युत-रेखा

उसकी काली-काली आँखों मे चमकी, और इसके पहले कि उसकी चमक मेरी आँखों को चकाचौंध कर दे वह घूँघट मे ही खो गई। मै अनियन्त्रित-सा उसकी ओर बढ गया। उसके बिलकुल पास जा खड़ा हो बोला—"सुनयना !"

वह कुछ सिकुड़-सी गई, जैसे लाज से और गड गई हो।

मैने सहसा कहा—"सुनयना, अब मुझसे भी शरमाने लगी ?"

उसने तनिक सिर उठा कर घूँघट की ओट से मेरी ओर देखा। उसके होठो पर एक मृदु मुस्कान थिरक रही थी, जिसमे अभी रूप का अभिमान नही था।

"वाह ! तुम तो जैसे बचपन की सारी बाते भूल गई। वह नाचना और खेलना, वह हँसना और रूठना, वह खिझना और रोना, तुम्हे अब कुछ भी याद नही, सुनयना ?"

उसने घूँघट जरा पीछे खिसका कर, आँखे उठा मेरी ओर देखा। उन आँखो मे जैसे बचपन की सारी कहानियाँ उभर आई हों। तनिक देर के लिये हम आँखो में आँखे डाले बचपन की मीठी यादों में खो गये।

"आओ न, सुनयना ! एक बार फिर हम हाथ मे हाथ ले बचपन का गुजरा जमाना ताजा करें ! गले से गला मिला बचपन के मधुर गीत एक बार फिर गा ले ! न जाने वे आजादियाँ, वे रङ्गीन घड़ियाँ, वे प्यारी-प्यारी मासूम बाते कब हमेशा-हमेशा के लिये खत्म हो जाये !" बचपन की याद मे ही खोया-सा मै बोला।

"किशन भैया !" एक ठंडी आह ले कर उसने कहा—"वे दिन तो अब बीत भी चुके, भैया !"

मुझे जैसे बिजली छू गई। सहसा मुझे विश्वास न हुआ कि हम इतने बड़े हो गये हैं। मैने अनायास ही झुक कर उसका हाथ पकड लिया। उसकी कलाई की लाल-लाल चूड़ियाँ खनखना उठी। उसके हाथ मेरे

काँपते हाथ मे काँप रहे थे। सारी देह मे एक सिहरन-सी दौड गई थी। एक अजीब तरह की थर्राहट- भरी नजर से उसने मेरी ओर देख कर अपना हाथ छुडाते हुए कहा—"किशन भैया, छोडो मेरे हाथ! कही कोई देख न ले!"

मैने उसका हाथ छोड कर देखा, उसके गालो पर जैसे लाल-लाल धारियो की जाली बुन गई थी, उसके कान की लवे खून की तरह सुर्ख हो गई थीं, और उन नीम मासूम आँखो मे जैसे कोई भय थर्रा रहा था। तब मुझे लगा कि सुनयना अब वह नन्ही सुनयना न रही। मैं अपने दिल में एक अजीब-सी गुदगुदाहट लिये वहाँ से हटने को हुआ कि सुनयना ने फिर एक बार मेरी ओर आँखे तिरछी कर देखा। अब की मुझे लगा कि उन नीमबाज आँखों में एक इशारा था, एक सन्देशा था, एक हसरत थी। मै मन-ही-मन मुस्कराता वहाँ से हट गया।

समय वर्ष पर वर्ष की तह लगाता रहा, लेकिन मेरे हृदय पर जो सुनयना का रूपमय चित्र खिच गया था, उसे वह धुधला न कर सका। मै अब युनिवर्सिटी का विद्यार्थी था। जवानी जोश पर थी। आँखों मे हमेशा नशा-सा छाया रहता। और उस जोश और नशे की तह मे सुनयना की मधुर यादे चुटकियाँ लिया करती। मै स्वप्नो की दुनिया की कल्पना करता, सुनयना सपनों की परी बन मेरी आँखो मे उतर आती। मैं दाम्पत्य जीवन की सोचता, सुनयना दुलहन बनी घूँघट की ओट से झाँक जाती। मै जीवन में प्रेम और सुख खोजता, सुनयना प्रेम की देवी बन अपना रूपमाधुर्य लुटाती हुई मेरी आँखो के सामने थिरक उठती। मेरी भावनाये सुनयना को केन्द्र बना उसके चारों ओर मँडराया करती।

खुदा-खुदा करके गर्मियों की छुट्टियाँ आई। अपने हृदय मे सुनयना के प्रति कितने ही मीठे अरमान सँजोये मैं घर आया। उम्मीद थी कि हमेशा की तरह सुनयना सुबह मे अपनी माँ के साथ दूध देने-आयेगी। रात भर

रङ्गीन सपनो मे खोया रहा। सुबह हुई तो धड़कता हुआ हृदय लिये मैने अपनी आँखे सुनयना की राह मे बिछा दी। तरह-तरह के मनसूबो के हुजूम मे दिमाग उलझ रहा था। एक अजीब-सी घबराहट की हालत तारी हो रही थी। कभी उठ कर कमरे मे टहलने लगता, और कभी खिड़की के पास जा पुरवे से आने वाली पगडंडी की ओर देखने लगता।

सहसा नीचे से सुनयना की माँ की आवाज आई। मेरा कलेजा धक से कर गया। कमरे के दरवाजे से आँगन में एक उडती हुई दृष्टि फेकी, तो कोने मे सुनयना की माँ उपले तोड़ रही थी। यह क्या? सुनयना की माँ तो कभी यह सब नही करती थी, मन मे शका उठी। बरामदे मे आ कर जो देखा, तो सुनयना वहाँ कही नहीं थी। मुझे लगा जैसे मेरी आँखो के सामने जगमग-जगमग तारो-भरे आकाश पर अचानक अन्धकार का पर्दा पड़ गया।

सुनयना क्यो नही आई? क्या हो गया उसे? कही बीमार तो नही पड़ गई? तरह-तरह के बेचैन करने वाले सवाल मेरे दिमाग मे उठने लगे। सोचा, उसकी माँ से पूँछू। मगर हिम्मत न हुई। जाने क्या सोचे। एक जवान लड़का एक जवान लड़की के बारे मे किसी से कुछ पूछे, इसका क्या मतलब? मतलब चाहे जो कुछ भी हो, जवानी एक ऐसी चीज है, जिसे समाज शका की नजर से देखता है। और जब उसे जरा भी शुबहा हो जाता है, तो वह जवानी के विरुद्ध षड्यन्त्र करना शुरू कर देता है। जवानी की कितनी उमगो, कितनी चाहो कितनी हसरतो को यह षड्यन्त्र बेदर्दी से पामाल नही कर देता!'

दूसरी सुबह भी जब अपनी माँ के साथ सुनयना न आई, तो मै अत्यधिक व्याकुल हो उठा। अपने को अधिक रोक रखना मेरे लिये असम्भव था। सुनयना से मिलने को मेरा दिल बेहद तड़प रहा था। मै जानता था कि सुनयना और उसकी माँ के सिवा कोई और उसके घर मे नही है। उसकी

माँ को अभी गाँव मे दूध देने मे घन्टो लग जायेगे। सुनयना अपने घर मे अकेली होगी। सोचा, तब तक क्यो न मै ही उसके घर से हो आऊँ? यह ख्याल आना ही था कि मैंने चप्पल पहने, और अम्माँ की निगाह बचा कर घर से बाहर हो गया।

सुबह का सुहावना समय था। पूर्वी क्षितिज के नीचे से सूरज की कोमल किरण निकल कर ऊषा की सिन्दूरी साड़ी पर सुनहरी धरियाँ बन झलमला रही था। पुरवा हवा खरामा-खरामा चल रही थी। वृक्षो की नव पल्लवित शाखायें मन्द-मन्द झूम रही थी। उनके पत्तों के हिलने से ऐसी आवाज आती थी, जैसे हवा मे कोई नदी कल-कल करती धीरे-धीरे बह रही हो। कभी-कभी दूर से आती हुई कोयल की सुरीली कूक एक दूरागत झकार की तरह उस सुनहले वातावरण मे गूँज उठती थी। मै कटे खतो के बीच से बहार का एक गीत गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था।

वहाँ पहुँच कर, सुनयना के घर के दरवाजे पर कु डी चढी देख कर मै अकचका-सा गया। मन सो मन का एक मन हो गया। दिल की मचलती उमगे जैसे आहत हो फड़फड़ा उठी। तो क्या सुनयना कही चली गई? यह ख्याल आना ही था कि मुझे लगा, जैसे अचानक मै पहाड़ की चोटी से गहरे खड्ड म गिर गया हू। मेरी आँखों मे हठात् आँसू आ गये। मेरे सपने एक-एक कर मेरी धुँधली दृष्टि के सामने ही बिखरने लगे।

"किशन भैया!" सहसा पीछे से एक सुरीली आवाज मेरे कानो से आ टकराई। मुझे लगा कि जिस धारा मे मै डूब रहा था, उसी धारा ने अचानक मुझे एक टीले पर ला कर खडा कर दिया। मैने मशीन की तरह मुड कर देखा, सुनयना एक हाथ मे भीगी साडी और दूसरे में कुछ डठल-सहित कमल के फूल लिये मेरे सामने एक वन देवी की तरह खड़ी थी। उसके भीगे बाल कन्धों पर लहरा रहे थे, और उनमे उसका निखरा हुआ चेहरा ऐसा लग रहा था, जैसे बरसती हुई सावन की काली घटाओ मे पूर्णिमा का चाँद मुस्करा

रहा हो।

"तुम शहर से कब आये, किशन भैया ?" आँखो से खुशी छलकाती हुई वह बोली। फिर मेरे हाथो में कमल के फूल थमा कर दरवाजे की कुंडी खोलने लगी।

"मै तो परसों ही आ गया," कमल के फूलों से खेलते हुये मैंने कहा—"दो दिन तक तुम्हारे आने का इन्तजार किया। जब तुम न आई, तो आज खुद ही"

"मुझे क्या मालूम था, भैया !" बीच ही में दरवाजा खोल कर वह बोल पड़ी—"अच्छा, आओ ! यह भी तो तुम्हारा ही घर है। अच्छा हुआ जो तुम्हीं आ गये। मुझे तो अब माँ कहीं आने जाने नही देती। कहो, अच्छे रहे न ?"

घर के अन्दर होते उत्तर में मैंने सिर हिला दिया।

आँगन मे एक खटोले पर मुझे बैठा कर सुनयना अन्दर के एक कमरे मे चली गई।

थोड़ी देर में वह अपने बाल ठीक कर आई। और एक छिपुली मे कुछ मोतीचूर के लड्डू मेरे सामने खटोले पर रख कर तनिक शरमाई हुई बोली—"लो, किशन भैया, मुँह तो मीठा कर लो। ये लड्डू मैंने तुम्हारे लिये चुरा कर रखे थे।"

"अच्छा ! तो तुम्हे मालूम था कि मैं आऊँगा ?" तनिक विस्मय मिश्रित हर्ष से मैंने कहा।

"अगर तुम न भी आते, तो मैं एक-न-एक दिन तुम्हे इन लड्डुओ को खिलाने जरूर आती !" कुछ खोई-सी बोली वह।

"तो खिलाओ न !" मैं तनिक मुस्कराते हुए उसकी आँखों मे झाँकते कहा। मुझे लगा कि उसकी आँखो की पलके जैसे मुँद रही है, और वह उन्हे बरबस खोले रहने का प्रयत्न कर रही है।

"सुनयना !" अवस बोल पडा मै ।

सुनयना ने धीरे से हाथ बढ़ा, एक लड्डू उठा कर मेरे मुँह की ओर बढाया। उसके हाथ जैसे काँप गये। जल्दी मे ही उसने लड्डू मेरे मुँह में डाल हाथ खींच लिया, और झटके से मुँह दूसरी ओर फेर लिया, जैसे दिल पर बहुत जोर देकर उसने यह सब किया हो।

"सुनयना !" मै आवेश मे उसका हाथ पकड बोल पडा। मुँह मे लड्डू जैसे पत्थर के टुकड़े की तरह गड़ रहा था।

सुनयना ने धीरे से अपना मुँह मेरी ओर किया। मैने देखा, उसकी आँखों से मोटे-मोटे आँसू बह कर गालो पर ढुलक रहे थे।

"सुनयना !" उठ कर, उसकी आँखे अपने हाथ से पोछ कर रुँधे स्वर में मै बोला—"यह क्या ?"

"कुछ नहीं, भैया ! खाओ, तुम ! सुनयना का आर्द्र स्वर काँप रहा था।

"इस तरह मुझसे खाया न जायेगा, तुमने इसे व्यर्थ ही मेरे मुँह मे डाल दिया। मै इसे " थूकने के लिये मैने मुँह नीचे किया कि सुनयना काँपती हुई बाल पडी—"नही-नही, भैया, ऐसा न करो ! यह मेरी मगनी की मिठाई है, मेरे सुहाग ." वाक्य पूरा किये बिना ही वह मेरे मुँह पर अपना हाथ रख कर फफक पडी। मेरे दिल की धड़कन जैसे एक क्षण को रुक गई। निर्जीव-सा हो, शून्य मे अपनी फैली आँखे टिकाये वहीं बैठ गया।

सुनयना मेरे मुँह पर हाथ रखे हुये ही फिर बोली—"खा जाओ इसे, भैया !"

मेरी अटकी पलकें धीरे से सुनयना की ओर मुडी। उसकी आँखो से आँसू की धारे अविरल गति से बह रही थी। होंठ फड़क रहे थे। सारा शरीर काँप रहा था। मेरी आँखे तिलमिला गई। मुझे लगा, जैसे मैं किसी बवण्डर मे पड गया हूं, और पवन-चक्र के साथ जैसे मेरा सारा शरीर हवा मे चक्कर लगा रहा है।

सुनयना ने मेरा कन्धा पकड़ कर जोर से झकझोरा। मैं जैसे फिर धरती पर आ गया। कान मे अब भी कुछ सनसना रहा था। दिमाग और आँखो के चारो ओर अन्धकार का गोला कुम्हार के चक्र-की तरह घूम रहा था।

"किशन भैया!" सुनयना की विह्वल वाणी मेरे कानो से टकराई। अपने जघे पर किसी कोमल चीज का दबाव-सा मैने अनुभव किया। हाथ बढ़ाया, तो सुनयना के रेशमी बालो का स्पर्श हुआ। एक सिहरन-सी मेरे सारे शरीर मे व्याप्त हो गई। जाने कैसी भावना की लहर मेरे दिल मे लहरा गई। आँखे खोलीं, तो देखा सुनयना मेरे जानू पर सिर रखे सिसक रही थी। मुझे लगा, जैसे कोई अदृश्य हाथ मेरी ही आँखो के सामने उसकी माँग में सिन्दूर की लकीर खीच रहा है। मुझ पर एक पागलपन-सा तारी होने लगा। मेरे हृदय मे ईर्ष्या की आग-सी भड़क गई। मैने एक ओर मुँह मे घुले हुये लड्डू को जोर से थूक दिया। सुनयना ने सिर उठा कर देखा। उसकी बरसती हुई आँखो से चमकती एक हुई दृष्टि निकली, जैसे बरसती हुई घटा मे बिजली कौध गई हो।

मैने अपने दोनो हाथों मे सुनयना का मुँह मजबूती से ले अपनी ओर घुमाया। उसकी आँखों मे जैसे शोला लपलपा रहा था। उसके नथुने काँप रहे थे। लेकिन मै तो जैसे और दुनिया मे था। मेरे हृदय मे ईर्ष्या की जलन और तेज हो रही थी। मेरी साँसे गरम हो टूटने लगी। पिडलियो मे एक थर्राहट-सी हुई। मैने अपना सिर झुका कर उसके मुँह को अपने मुँह की ओर खीचा कि वह हिरनी की तरह उछल कर अपनी आँखो से आग बरसाती मुझसे दूर जा खड़ी हुई। मै आवेश मे ही उसकी ओर लपका कि उसने दाँत पीस कर कहा—"किशन!"

मेरे पैर जैसे धरती से सट गये।

"तुम यहाँ से चले जाओ! तुम्हारी आँखों मे ." कह कर उसने अपनी आँखों पर हाथ रखे कमरे मे जा दरवाजो को अन्दर से बन्द

कर लिया ।

मेरी आँखों के सामने जैसे चौदहों तबक रोशन हो गये। लगा; जैसे धरती फट रही है, और मैं उसमे धुसा जा रहा हूं। 'उफ! यह मैं क्या करने जा रहा था?' मेरे ललाट से पसीने की धारें बह चलीं। ..

"देखिये वहाँ जो रोशनी दिखाई दे रही है न, वही मेरी झोपड़ी है,"—युवक ने मेरी ओर मुड़ कर कहा।

मै जैसे एक भयंकर सपने से उचक-सा गया। मेरा सारा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। मैने उँगलियो से ललाट का पसीना पोंछा।

"हवा बिलकुल बन्द हो गई है। मालूम होता है कि फिर आँधी आयेगी,"—युवक ने कहा।

"हाँ बड़ी उमस है। मारे पसीने के जान निकल रही है," मैने बाहों का पसीना पोंछते हुए कहा। और फिर अतीत मे डूब गया—

इस घटना ने मेरे जीवन मे अपने ही प्रति एक विचित्र-सा विक्षोभ भर दिया। अब मेरे जीवन मे जो एक कभी अन्त न होने वाली भटकन आ गई है, उसकी प्रेरणा इसी विक्षोभ से मुझे अनजाने रूप मे मिली थी। यह विक्षोभ मेरे जीवन की सारी कोमल भावनाओं, प्रेम, सौन्दर्य तथा सुख की कल्पनाओं को जैसे अपने मे आत्मसात कर गया।

एक साल और बीत गया।

अभी तक मै अपने विवाह की बात टालता आ रहा था। मेरे बी० ए० पास करते ही अम्माँ की जिद बढ गई। मेरे लिए विवाह मे अब कोई आकर्षण नहीं रह गया था। पर अम्माँ का मन तोडने की शक्ति मुझ मे नहीं थी। उन्हे घर बसाने के लिये एक बहू चाहिये थी। मेरा दिल तो जैसे हमेशा के लिए वीरान हो चुका था। उसे फिर कोई बसा सकेगा, इसकी कल्पना तक मेरे दिमाग मे न आती। फिर किसी के भी बहू बन कर अम्माँ के घर मे आने से मुझे क्या दिलचस्पी या गुरेज होती!

आखिर एक दिन प्रेमा दुल्हन बन कर हेना की खुशबू बिखेरती हुई मेरे घर में आ गई। अम्माँ की खुशी का ठिकाना न रहा चाँद-सी बहू पा कर। प्रेमा के रूप-लावण्य ने घर के अँधेरे कोनों मे चाँदनी की सुषमा बिखेर दी। उसके नूपुरों की रुनझुन से घर का सूना वातावरण सगीतमय हो उठा। अम्माँ के अरमान पूरे हुये। मगर प्रेमा की मद-भरी आँखें मेरी रूखी आँखों मे शराब न उड़ेल सकीं, उसकी मृदु मुस्कान, मेरे भावना शून्य हृदय मे बिजली बन कर न उतर सकी।

अगले साल मेरी एम० ए० की पढ़ाई शुरू हुई। इसी समय शेखर से मेरी जान-पहिचान हुई। वह साहसिकता, शौर्य और जाँबाजी की अद्भुत कहानियाँ मुझे सुनाता। मुझे उसकी बातों मे बड़ा मजा आता। घंटों हम एक साथ बैठ कर राजनीति पर बातें करते, और देश के दुर्दिन पर आठ-आठ आँसू रोते। शेखर के हृदय मे देश-सेवा की सच्ची लगन थी। वह देश को आजाद देखना चाहता था। गरीबों को खुशहाल देखना चाहता था। उसकी हर बात दिल की इतनी गहराई से निकलती थी कि उसमे जादू का असर होता था। उसके कहने का ढङ्ग इतना मार्मिक होता था कि उसकी बातें मेरे दिल व दिमाग पर छा जाती, और सहसा कुछ कर गुजरने की एक तीव्र भावना मन मे जाग्रत हो उठती थी। मुझे अब जीवन का मोह नहीं था। साधारण जीवन के सुख की आकांक्षा न थी। एक अन्तर की प्रेरणा मुझे शेखर की ओर खींचने लगी। मेरी आँखों मे भी जीवन-उत्सर्ग के सपने पलने लगे। हृदय मे देश-सेवा की उमगें जोर मारने लगीं। आखिर एक दिन मैंने शेखर का हाथ पकड़ कर कहा—"शेखर, मुझे तुम्हारी राह पसन्द है। तुम कोई योजना बनाओ। मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारा साथ दूँगा!"

मेरी बात सुनकर वह मुस्कराया। फिर बोला—"किशन, अग्नि पथ पर कदम रखने के पहले अपने को अच्छी तरह तौल लो। ऐसा न हो कि क्रान्ति की ज्वालाओं को देख कर तुम्हारा हृदय काँप जाय, और कदम लड़खड़ाने लगें।

उसकी मुस्कान में मेरे यौवन के प्रति अवहेलना का भाव न था, बल्कि उसकी अपनी सफलता का अव्यक्त उल्लास था। मै ताड गया। उसके कन्धो को हाथों से पकड़ कर मै बोला—"शेखर, मुझ पर विश्वास करो! मै जवानी के नाम पर कलक न लगने दूँगा! मुस्कराते हुये ज्वालाओं का आलिंगन करूँगा!"

उसने मेरी बात सुन कर हँसते हुये मेरी पीठ थपथपाई। फिर कहा—"अच्छा, आज युनिवर्सिटी के बाद मेरे साथ चलना!"

उसी शाम को उसके दल के नायक के साथ एक घने जगल मे मेरा परिचय हुआ। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद और साथियों के साथ मेरी भी प्रारम्भिक तैयारी की शिक्षा शुरू हुई। साहसिकता के कार्यों, खतरे के प्रयोगो और जवानी के खेलों ने शरीर मे असीम शक्ति, हृदय मे अदम्य उत्साह और जवानी में बला का जोश भर दिया। जीवन में महान आकाक्षाओं का स्रोत फूट पडा। नेत्रों मे शूरता का खून उतर आया। उमंगों से अग-अग फड़कने लगे।

आखिर पूरे एक साल के बाद दीक्षा का समय आया। जीवन से जूझने वाले को परीक्षा का भय कैसा! बाँध तोड़ कर आगे अपना प्रलयकर वेग दिखाने के लिये धारा मचल रही थी। युनिवर्सिटी से अलग हुआ। अम्माँ और प्रेमा का सम्बन्ध-सूत्र सदा के लिये कट गया। उसी रात अलग-अलग हमारा दीक्षा सस्कार होने वाला था। मैं नायक के शिविर मे अकेले भेजा गया। नायक की आँखों मे स्थिर दृढ़ता और चेहरे पर गम्भीर मुस्कान उसके पास खड़ी मशाल की रोशनी मे चमक रही थी। उसने बैठे ही मेरी ओर रोबीली दृष्टि से देखा। मेरा सीना तन गया। उसने दृढ स्वर मे कहा—"युवक, दीक्षा के लिये तैयार हो?"

मैने मजबूत लहजे मे कहा—"हाँ!"

वह बिजली की तरह तड़प कर उठा, और हाथ में मशाल ले मेरी ओर

बढ़ाकर बोला—"अपना बायाँ हाथ मशाल की ज्वाला मे घुसेड़ दो !"

मैंने इन्कलाब का नारा लगाया। और तलवार की तरह अपना बाँया हाथ मशाल की लपटो मे घुसेड़ कर अडिग खड़ा हो गया। कलेजे की मजबूती के सामने आग पानी बन गई।

एक मिनट के बाद नायक ने मशाल हटाया। मेरी बाँह वैसे ही तनी रही। शरीर वैसे ही अचल रहा। आँखे वैसे ही उठी रही।

"शाबाश !" कह कर नायक ने अपनी बगल से पिस्तौल निकाला। और इन्कलाब का नारा लगा कर हवा मे फायर किया।

मैंने सिर की एक जुम्बिश से उसका अभिवादन किया। उसने पिस्तौल मेरे कन्धे से लटका कर मुस्कराते हुये मुझसे हाथ मिलाया।..

मेरा पैर छपाक से पानी मे पड़ गया। युवक मुड़ कर, मेरा बायाँ हाथ पकड़ कर बोला—"देखिये, गड्ढे मे पानी भरा है। अँधेरे मे कुछ दिखाई नही देता। जरा इधर से मुड़ कर आइये ! अब थोड़ी दूर और चलना है।"

"अच्छा !" जैसे नशे से एक क्षण को होश मे आ कर पानी से पैर निकालते हुये मैंने कहा, और फिर नशे ही मे डूब गया। तीन साल तक खून और आग से खेले हुए भयकर खेल, आँधी और तूफान की खतरनाक जिन्दगी, जोखिमो और आपत्तियो की हृदय हिला देने वाली घटनाये मेरे स्मृति-पट पर तारो की तरह जगमग-जगमग करने लगी। हमारे फौलादी कदम जिधर भी उठ जाते, जमीन थर्रा उठती ! हमारी लाल आँखे जिधर भी चमक जाती, कहर बरपा हो जाता ! हमारे साथ आग की लपटे चलती थीं, प्रलय का विध्वंस चलता था, वज्र का जय-घोष होता था। इलाके की सरकार हम से काँपती थी। गरीब खुश थे। अमीरों की जान पर बन आई थी। लूट और हत्या हमारा पेशा था। प्रेम और दया का हमारे लिये कोई अर्थ न था।

किन्तु उस दीर्घ, साहसिक और भयंकर जीवन-रात्रि मे भी एक तारा

सदा मेरी आँखों के सामने चमका करता था। उससे मैं लाख आँखें बन्द करता, पर उस तारे की चमक मेरी आँखों के सामने से न हटती। वह तारा सुनयना थी। उसे मै कभी भूल न सका।

एक रात की बात है। हम एक लम्बा हाथ मार कर अलग-अलग रास्तों से अपने गुप्त स्थान पर वापस लौटे। सब तो आ गये, किन्तु नायक का अब तक पता न था। यह एक असाधारण बात थी, क्योंकि हमेशा वह सब से पहले ही नियत स्थान पर पहुँच जाता था। हमने कुछ देर तक और इन्तजार किया। सुबह तक जब वह वापस न आया, तो हमारा माथा ठनका। हमारा उपनायक गुप्त रूप से नायक का पता लगाने शहर गया। उसके लौटने पर पता चला कि नायक अचानक रात को ही गिरफ़ार हो गया है, और सी० आई० डी० तथा पुलिस हमारे फिराक मे भी सरगर्मी से काम कर रही है। हमने आदेश के लिये उपनायक की ओर देखा। उसने कुछ सोच-विचार के बाद छः महीने के लिये हमे तितर-बितर हो कर गुप्त रूप से जीवन व्यतीत करने की आज्ञा दी। फिर मिलने के लिये एक स्थान और समय नियत कर हम अलग-अलग हो गये।

छः महीने बाद जब हम मिले, तो हमारे एक साथी ने बताया कि हमारे उपनायक के साथ-साथ हमारे तीन और साथी भी गिरफ़ार हो चुके हैं। अब क्या हो? हमने बहुत सोच-विचार के बाद फिलहाल कोई कार्य-क्रम बनाना उचित न समझ कर दल के कार्यों को स्थगित कर देना ही ठीक समझा।

जीवन-धारा जैसे एक बहुत मजबूत चट्टान से टकरा कर पीछे को मुड़ी। अम्माँ की याद आई। बेचारी प्रेमा का ख्याल आया।...

"जरा झुक जाइये! दरवाजा बहुत छोटा है।" अपने घर के दरवाजे पर ठिठक कर युवक ने कहा।

"हाँ मैं देख रहा हूँ," वर्त्तमान में आ कर मैने कहा—"तुम चलो!"

क्षणों के अन्दर सुनयना मेरे सामने होगी, यह सोच कर जैसे मेरे शरीर

में एक सिहरन सी-दौड़ गई। किन्तु इस वेश मे नयना क्या मुझे पहिचान सकेगी ?

युवक के पीछे-पीछे मै घर में दाखिल हुआ। सुनयना बड़ी बेचैनी से युवक की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे देखते ही वह उससे कितने ही सवाल एक साथ पूछ बैठी। उन सवालो मे सुनयना के प्रेममय पत्नीत्व का जो रूप मेरी आँखो के सामने डोल गया, उससे मै क्षण भर को विचलित-सा हो गया। मैने सोचा था, सुनयना अपने मन का पति न पा कर दुखमय जीवन काट रही होगी। उसके यौवन और सौन्दर्य पर एक गहरी विषाद की छाया पड़ी रहती होगी। उसका स्वस्थ शरीर हृदय की व्यथा मे घुल गया होगा। किन्तु ऐसी कोई बात न थी। इस सुनयना और पाँच साल पहले की सुनयना मे यदि कोई अन्तर था, तो यह कि अब वह कुछ मोटी हो गई थी, और उसके अल्हड़पन का स्थान शील और घर के उत्तर-दायित्व ने ले लिया था। मैने एक सन्तोष की साँस ली।

थोड़े से शब्दो मे ही युवक ने सुनयना के सारे प्रश्नो का बड़ी खूबी के साथ समाधान कर दिया। जहाँ प्रेम और विश्वास की छाया मे जीवन बीतता है, वहाँ सन्देह और कटुता का अंकुर कैसे फूट सकता है ? सुनयना खुश-खुश पास से एक लोटा उठा पानी लाने को मुड़ी कि युवक ने मेरी ओर घूम कर उससे कहा—"मेरे साथ एक मेहमान भी हैं !"

नयना अकचका कर मेरी ओर देखते हुये सिर का आँचल ठीक करने लगी। मैने आँखे नीचे कर ली। आज मै सुनयना के सामने पर पुरुष था। वे दिन क्या अब उसे याद होंगे, जब मुझे अकेले मे देख कर उसे अपने आँचल के सरकने तक की सुधि न रहती थी। मेरे मन मे पुरानी बातो को याद कर एक व्यथा-सी उभर आई।

दोनो ने यथा शक्ति हर तरह से मेरा सम्मान किया। मै दूसरे दिन सुबह ही चला जाने वाला था, पर सुनयना की मीठी बातो मे मै जो एक अव्यक्त

आनन्द का अनुभव कर रहा था, उसके कारण युवक से एक-आध बार अपने जाने की बात कह कर भी उसके रोकने पर दूसरे दिन मैं रुक गया। मै खुश था कि सुनयना मुझे पहिचान न सकी।

आज इनके यहाँ मेरी तीसरी शाम थी। आज हमारा भोजन परसते समय सुनयना अधिक खुश मालूम पडती थी। उसकी आँखों की चमक में उसके हृदय का कोई छिपा हुआ उल्लास जैसे रह-रह कर फूट पडता था। मैंने सोचा, कई दिन हो जाने से अब सुनयना की झिझक कम हो गई है।

भोजन करके युवक के साथ ही मै भी उठ पडा। युवक हाथ-मुँह धो कर एक ओर खडा हो गया। सुनयना ने मुझे लोटे का पानी दे कर युवक की गोद मे मुन्ना को देते हुये न जाने क्या फुसफुसाया। युवक मुन्ना को गोद मे लिये मुस्कराता हुआ बाहर चला गया। सुनयना मेरे पास आ खडी हो गई। मैंने जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धो कर लोटा सुनयना की ओर बढा बाहर जाने को पग बढाया कि सुनयना बोल पडी—"किशन भैया!"

मेरे हाथ से लोटा छूट कर धरती पर गिर पड़ा। मेरी हालत ठीक वही हुई जो एक पर्दानशीन युवती की सडक पर चलते वक्त अचानक खुल कर सर से बुरका गिर जाने पर होती है। मै बगलें झाँकने लगा।

"यह क्या भेष बना रखा है तुमने? मेरा हाथ पकड कर सुनयना बोली—"सोचा होगा सुनयना पहचान न सकेगी। है न?"

मेरे सारे शरीर मे एक कपकपी-सी व्याप्त हो रही थी। यह वही शरीर था, जिसकी भुजाये लोहा, वक्षस्थल चट्टान, क्रोध आग की लपट, जो सरापा एक कहर था!

उसने मेरा हाथ खींच कर कहा—"आओ, तनिक बैठो!"

मैंने खटोले की ओर पाँव बढाते समय एक नजर बाहर दरवाजे की ओर फेंकी।

"उधर क्या देख रहे हो? अरे, हाँ, तुमने उनसे क्यो अपने बारे में

कुछ बताने को मना कर दिया था !"

मै कुछ स्वस्थ हो खटोले पर बैठ गया। सुनयना मेरे पाँवो के पास धरती पर बैठ कर बोली—"भैया, कहाँ रहे इतने दिनो तक? भला कोई अपने लोगो को भी यो भुला बैठता है। अपने ब्याह के पाँच साल बाद किसी तरह उनसे कह सुन कर मै माँ के घर गई थी। क्या करती, वह एक पल के लिये भी मुझसे अलग होने को तैयार ही नही होते थे। वह तो माँ के बीमार होने का समाचार आया, तब उन्होंने जाने दिया। वहाँ जाने पर माँ से पता लगा कि तुम अपने ब्याह के बाद शहर पढने गये। फिर तुम्हारी कोई खबर तब से न मिली। तुम्हारी अम्माँ ने कई बार शहर मे आदमी भी भेजे, मगर तुम्हारा पता कही भी न लगा। आखिर उन्होने अपना सिर पीट लिया। बेचारी भाभी रोते-रोते निढाल हो गई। मुझे यह सब जान कर बड़ा दुख हुआ। माँ से कह कर मै तुम्हारे यहाँ गई। वहाँ पूरे घर मे मातम का सन्नाटा-सा छाया था। तुम्हारी अम्माँ तो जैसे तुम्हारे वियोग मे दिवानी हो गई थी। रह-रह कर 'किशन-किशन' कह कर वह चिल्ला पड़ती थी। कभी-कभी भाभी को सामने देख उसे अपनी गोद मे समेट, उसके सिर पर अपना मुँह रख, घण्टो सिसक-सिसक कर रोती रहती थी। कभी तुम्हारे कमरे मे जा तुम्हारे छोड़े हुये कपड़ो और जूतों को बार-बार छाती से लगा, बिलख बिलख पड़ती थी। मुझसे उनका हाल..." कहते-कहते सुनयना सिसक पड़ी।

मेरे कलेजे मे जैसे कुछ चुभने-सा लगा। मेरे मस्तिष्क मे अम्माँ की करुण पुकार गूँजने लगी। मेरी आँखो से उनके प्यार की स्मृतियाँ आँसू की धारे बन बरस पड़ी।

"किशन भैया, तुम इतने निर्मोही कैसे हो गये? तुम तो ऐसे न थे!" आँचल से अपनी आँखे पोछ कर सुनयना बोली—"भाभी तुम्हारे वियोग मे जैसे निर्जीव पत्थर की मूरत बन गई है। न बोलना, न हसना चुपचाप न जाने शून्य मे क्या देखा करती है। रात-रात भर दिया जलाये तुम्हारी राह

मे अपनी आँखे बिछाये रहती है। जरा भी खटका होने पर चिहुँक कर इधर-उधर आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगती है। कुछ न देख फिर जैसे समाधि लगा कर बैठ जाती है। विरह की आग मे उसकी जलती हुई जवानी, जैसे बसन्त के उपवन म आग की वर्षा हो रही हो, नहीं देखी जाती, भैया !"—कह कर सुनयना अपनी दोनों आँखो को हाथों से ढकती फफक पड़ी।

मुझे लगा, जैसे निरीह गुलाब की कली-सी प्रेमा अनजाने मे मेरे फौलादी हाथो म पड़ कर मसल गई हो। शादी के दिनों की भोली-भाली, मुस्कराती प्रेमा जैसे अपनी आँखों मे असीम व्यथा के अश्रु भरे मेरे सामने खड़ी हो कह रही हो—'बेदर्द, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो मेरी उठती जवानी को एक बार छेड कर जीवन भर बेदर्दी से तड़पने को छोड़ दिया ?' मेरा हृदय उसकी व्यथा की कल्पना-मात्र से काँप गया। मैंने उठते हुये भर्राये स्वर मे कहा—"अच्छा, सुनयना, अब मै जा रहा हू। जाते-जाते मैं चाहता हू कि तुम मेरे उस दिन के पागलपन को दिल से निकाल कर मुझे माफ कर देना ! शायद यह हमारी-तुम्हारी आखिरी मुलाकात है।"

सुनयना ने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर वह भीगे स्वर मे बोली—"किशन भैया, तुम्हे मालूम नहीं कि उस दिन तुम्हारे चले जाने पर मै कितना रोई और तड़पी था। मेर दिल मे एक कसक अब तक बनी हुई है कि उस दिन अगर मैंने उस तरह तुम्हारा दिल न तोड़ा होता, तो आज तुम्हारी अम्माँ का बिलखना, भाभी का इस तरह तड़पना और तुम्हारे जीवन म यह भटकन तो न देखनी पड़ती। लेकिन मै उस वक्त विवश थी, किशन ! मेरा शरीर मेरे पास दूसरे की अमानत के रूप मे था। उस पर मेरा अधिकार नही रह गया था। नहीं तो जिसकी मोहिनी सूरत मैंने बचपन से अपने हृदय मे बसा रखी थी, उसके चरणों पर इस शरीर का उत्सर्ग होना क्या मेरे लिये सौभाग्य की बात न होती ? किन्तु अब उन बातो को सोचने से क्या फायदा ? आज मैं दूसरे की हूं, और तुम देख रहे हो कि खुश भी

हूं।" मैं जानती हूं कि यह खुशी मेरे जीवन की सब से बड़ी छलना है, फिर भी उनके भोले प्रेम की अवहेलना करने की मुझ में शक्ति नही है। भैया, क्या मेरी ही तरह तुम भाभी के साथ खुश नहीं रह सकते? मै जानती थी कि तुम एक-न-एक दिन मेरे यहाँ अवश्य आओगे। मन-ही-मन मे मैने प्रतिज्ञा भी की थी कि उस दिन तुम मुझसे जो भी चाहोगे, मैं दूँगी; तुम्हारे टूटे दिल को जैसे भी हो सकेगा, जोड़ने का प्रयत्न करूँगी। फिर आँचल पसार कर तुमसे भाभी के उजड़े दिल की बस्ती बसाने की भीख माँगूगी। किशन भैया, आज यह सुनयना का शरीर भी तुम्हारे चरणो पर है। भले ही आज उनकी अमानत लुट जाय, मेरे जीवन की पवित्रता पर कलक लग जाय, किन्तु अब मै तुम्हे यों दर-दर भटकने न दूँगी।" कह कर सुनयना गिड़गिडाती हुई मेरे पैरो पर गिर पड़ी।

मेरी आँखो के सामने जैसे एक स्वप्न-आलोक खुल गया। वर्षा के सूने हृदय मे जैसे सहसा भौरो की गुंजार भर गई। जीवन आप मे ही पूर्ण-सा हो उठा। झुक कर हाथो से सुनयना को उठा कर श्रद्धा-भरे स्वर में मैने कहा—"सुनयना, तुम्हारे इस त्यागमय समर्पण मे आज मुझे सब कुछ मिल गया। हृदय की जिस काँटे की चुभन को मै अपने को ज्वाला मे झोंक कर भी न मिटा सका, आज उसे तुमने अपने हृदय के सच्चे स्नेह से सहला कर सदा के लिये दूर कर दिया। मुझ अन्धे की आँखों मे आज तुमने जो ज्योति भर दी है, उससे मेरा जीवन-पथ सदा आलोकित रहेगा। तुम खुश रहो! अम्माँ को उसका बिछुड़ा लाल मिल जायगा, प्रेमा का उजड़ा संसार बस जायेगा!" कह कर मैंने पैर उठाया।

"किशन भैया, आज मै अपनी जिन्दगी मे पहिली बार इतनी खुश हूँ।" कहते हुये विह्वल-सी सुनयना मुझसे लिपट गई। उसकी आँखों से हर्ष के आँसू बह चले।

"पगली! छोड़ेगी भी मुझे!" कह कर मैंने उसके गालों को फूल के

हाथ से थपथपा दिया।

उसने अलग होकर कहा—"तो कब जा रहे हो घर?"

"अभी, इसी वक्त!"

"इसी भेष मे? मै तुम्हे यो न जाने दूँगी! मेरी नन्ही-सी भाभी तुम्हें इस भेष मे देख कर डर जायगी। आज रात भर आराम कर लो, कल तुम्हें दुल्हा बना कर भाभी के यहाँ उनके साथ भेज दूँगी। आओ, चलो!" उसने मेरा हाथ पकड कर खीचते हुये कहा।

उसके पीछे-पीछे मै मर्दानी झोपड़ी मे आया। युवक सोये मुन्ना को गोद मे हलराते हुये सुनयना की ओर मुस्करा कर देखते बोला—"क्यों, मना लाई रूठे भैया को?"

"और नही तो क्या? मेरा भैया तुम-सा बुरा थोड़े ही है, जो मेरा कहना न मानता। अच्छा, सो रहो अब कल जाना है तुम्हे अपनी बहन के यहाँ!"

सुन कर खिलाखिला कर हँस पड़ा युवक मुन्ना को चटाई पर सुलाते।

सुनयना चली गई। दिन भर का मिहनत का मारा युवक मुन्ना को गोद मे दुबकाये मिनटो मे ही गहरी निद्रा मे डूब गया। पर मेरी आँखे वर्षो तक अन्धकार के खोहो मे मॅडराने के बाद जिस जीवन-अलोक मे खुल गई थीं, अब एक क्षण को भी बन्द न होना चाहती थी। मै सोच रहा था कि मेरे जीवन की भटकन मे भी एक बलवती प्रेरणा थी, जिसने आखिर मुझे मजिल तक पहुॅचा दिया, जहाँ विहरिणी प्रेमा, जिसके जीवन की हर घडी इन्तजार की घडी होगी दीप जलाये बैठी हुई, उसकी शिखा मे मेरी तस्वीर देखती, मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी, और शायद कह रही होगी—

'निर्दयी प्रीतम!

तुम हो कि आते ही नही!

रात भर मेरा दीया जलता रहता है।

कितनी ही बत्तियाँ मै तैयार कर रखती हूं।

एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी,
एक-एक कर न जाने कितनी बत्तियाँ जल जाती हैं।
फिर भी तुम नहीं आते !
निर्दयी प्रीतम !'